आर्ष विश्व
आचार्य कल्याणबोधि

शिक्षासमीक्षा

राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मंडल ने आठवी कक्षा के हिंदी के पूरक पाठ्यपुस्तक के रूप में 'भारत की खोज' पुस्तक को स्थान दिया है । जो भारत के आदरणीय नेता व पूर्व प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू लिखित 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद है । भारत का गौरवमय इतिहास, भारत की परम पावन संस्कृति व भारतीय जनता के सुखी-संतुष्ट जीवन की आधारशिला समान भारत के प्राचीन धर्मों के विषय में छात्रों को जानकारी मिले, यही पवित्र उद्देश्य से पाठ्यपुस्तक मंडल ने इस पुस्तक को पसंद किया होगा, ऐसा हम अनुमान कर सकते है । इस पुस्तक का अध्ययन करके हमने उस पर निष्पक्षपात चिंतन किया। हमारे छात्रों व देश के हित के लिये, हमें जो कहने योग्य लगा, उसे हमने यहाँ प्रस्तुत किया है । आशा है केन्द्रसरकार, राज्यसरकार, शिक्षामंत्री व पाठ्यपुस्तक मंडल सहित समग्र देश के मनीषी निष्पक्षपाततया इस पर विचार करेंगे, और ऐसा निर्णय करेंगे जो देश के हित के पक्ष में होगा ।

'भारत की खोज' पुस्तक के चिंतनीय पहलूँ

(१) वैदिक युग के आर्य मृत्यु के बाद के अस्तित्व में बहुत अस्पष्ट ढंग से विश्वास रखते थे । (पृ० २१)

चिंतन : सभी वैदिक शास्त्र आत्मा, पुण्य, पाप, परलोक आदि सत्यों का प्रतिपादन दृढतापूर्वक करतें है । पूर्वजन्म, पुनर्जन्म के विषय में अनेक केस की जाँच करने के बाद अनेक आधुनिक विज्ञानी भी आत्मा व परलोक के विषय में स्पष्ट ढंग से विश्वास रखने लगे है, तो आस्तिकतासम्पन्न आर्यो के विषय में तो क्यों कहना ?

(२) आर्यो का आना (पृ० १९)

चिंतनः सर्वहेयधर्मेभ्य आराद्याता आर्या : - जिन्होंने सर्व पापो का त्याग किया है, उसे आर्य कहते है, ऐसी भारत के प्राच्यतम शास्त्रों ने कही हुई परिभाषा है । भारतीय प्रजा अनादि काल से अपने निष्पाप अहिंसाप्रधान जीवन के लिये सुप्रसिद्ध है । अतः आर्यो के आगमन की कल्पना उचित नहीं है ।

(३) वेदों की अवेस्ता से निकटता (पृ० २१)

चिंतन : वेदों को आर्य मानव के द्वारा कहा गया पहला शब्द कहा, जिससे वेदों को अपौरुषेय या भगवत्प्रणीत मानने वाली भारतीय जनता की धार्मिक भावना को ठेस पहुँच रहा है । वेदों की भाषा की इरान की भाषा से तुलना की गई है, और संस्कृत की अपेक्षा अवेस्ता

से ज्यादा समीप बताया गया है । भारतीय प्राच्यविद्या के कितने विद्वान इस बात से सम्मत होंगे ? व वेदों, जो भारतीय संस्कृति के उपहार है, उनके बारे में यह बात भारतीय संस्कृति के चाहकों को कितनी स्वीकृत होगी ?

★ निर्धन और अभागे लोग एक हद तक परलोक में विश्वास करने लगते है । (पृ० २२)

चिंतन : परलोक के इन्कार से विदेशों में जो भयानक हिंसा, चोरी, व्यभिचार आदि का तांडव मचा है, और भारतीय जनता अपनी नैतिकतामूलक आस्तिकता से विदेश की तुलना में कइ गुना अधिक स्वस्थ, संतुष्ट व सुखी जीवन जी रही है । आप किसी भी साल की खून, बलात्कार, चोरी आदि घटनाओं की (भारत व विदेश सम्बन्धी) तुलना करोगे, तो उसका परिणाम ही इस बात का परिचायक हो जायेगा । तो आस्तिकता का सम्बन्ध निर्धनता व दुर्भाग्य से बताकर हम भारतीय विद्यार्थीओं को क्यों बनाना चाहते है ? हमारे समस्त पूर्वज, धर्मगुरु, एवं धर्मोपदेशक परमात्मा आत्मा, परलोक व पुण्य-पाप आदि में द्दढ विश्वास रखते थे, तो क्यां वे निर्धन व अभागी थे ?

प्रत्यक्षसिद्ध वास्तविकता तो यही है कि जिन्हें परलोक पर विश्वास नहीं वे ही व्यसन, हिंसा, चोरी, व्यभिचार आदि अपराध करते है, और आखिर में न केवल निर्धन व अभागी होते है, अपितु हर तरह से बरबाद होते है । विश्व के हर अपराध के पीछे किसी न किसी प्रकार की नास्तिकता ही निहित होती है । तो नास्तिकता का समर्थन करके तथा आस्तिकता को ऐसे शब्दों से कुचलकर हम इस देश को किस दिशा में ले जाना चाहते है ?

★ वैदिक संस्कृति की मूल पृष्ठभूमि परलोकवादी या इस विश्व को निरर्थक मानने वाली नहीं है । (पृ० २२)

चिंतन - क्यां परलोकवादी होना, इस का अर्थ यह है कि यह विश्व व यह जीवन निरर्थक है ? क्यां यह प्रतिपादन भ्रमणा का प्रसार नहीं है ? 'यदि मैं किसी को मारुंगा या किसी को कष्ट पहुँचाऊंगा, तो मुझे परलोक में उसके कटु फल मिलेंगे । जैसी करनी वैसी भरनी ।' यह है परलोकवाद । जिस के आधार से मनुष्य अपराधों से मुक्त रहने की शक्ति पाता है और सुखी, स्वस्थ व नैतिक जीवन जीकर जीवन का सच्चा आनंद पाता है । परलोकवाद से ही इस जीवन की सार्थकता संभवित है, तो उससे इस विश्व के निरर्थक होने की आपत्ति कैसे आ सकती है ?

अधिक दुःख की बात तो यह है कि उक्त प्रतिपादन से परम आस्तिक वैदिक संस्कृति को नास्तिक कहा गया हो, ऐसा प्रतीत होता है ।

★ भारत में हर जगह मुझे एक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि मिली जिसका जनता के जीवन पर बहुत गहरा असर था । रामायण और महाभारत और अन्य ग्रन्थ भी जनता के बीच दूर दूर तक प्रसिद्ध थे । हर घटना, कथा तथा उसका नैतिक अर्थ लोकमानस पर अंकित था और

उसने उन्हें समृद्ध और संतुष्ट बनाया था । (पृ० १५)

चिंतन : भारतीय संस्कृति व रामायण आदि ग्रन्थ आस्तिकता से ही पूर्ण है व वे आस्तिकता की ही शिक्षा देते है, इसमें कोई संदेह नहीं है । आस्तिकता ही संतुष्टि व समृद्धि का मूल है, ऐसा स्वयं लेखकने स्वीकार किया है ।

सरकार यदि जनता को समृद्ध व संतुष्ट देखना चाहती है, तो रामायण, महाभारत और अन्य ग्रन्थ जिनमें संस्कृति, सदाचार, नैतिकता, अहिंसा, प्रेम, करुणा व आस्तिकता की शिक्षा हो उसका जनता में प्रसार करना चाहिये तथा इन ग्रन्थो के प्रेरक अंशो को पाठ्यपुस्तको में अधिक से अधिक स्थान देना चाहिये ।

★ अनपढ़ ग्रामीणों को सैकड़ों पद याद थे और अपनी बातचीत के दौरान वे बराबर या तो उन्हें उद्धृत करते थे या फिर किसी प्राचीन रचना में सुरक्षित किसी ऐसी कहानी का उल्लेख करते थे, जिससे कोई नैतिक उपदेश निकलता हो । (पृ० १५)

चिंतन : नैतिक शिक्षा देने वाले सैकड़ों पद व प्राचीन कथायें जिनकी बातचीत का हिस्सा बन गया हो, उन ग्रामीणों को शिक्षित कहा जाये ? या जिनके जीवन में नैतिकता का कोई स्थान न रहा हो ऐसे डिग्रीधारी व सत्ताधारी को ? हम शिक्षा देने पर अत्यधिक जोर देने लगे है, किन्तु शिक्षा की परिभाषा समजना उससे भी कइ गुना आवश्यक है, उसे समजे बिना हम कभी 'शिक्षा' नही दे पायेंगे, ऐसा नहीं लगता ?

★ न स्वर्ग और नरक है और न ही शरीर से अलग कोई आत्मा । (पृ० २७)

चिंतन : भौतिकवाद की मान्यता यह है, ऐसा पुस्तक में कहा गया है । इस से छात्रों को क्यां शिक्षा मिलेगी ? क्यां यह अपराधों की शिक्षा नहीं है ? **ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्** - की निम्न वृत्ति की शिक्षा नहीं है ? विश्व के बड़े बड़े मनीषी कह रहे है, कि जिसे परलोक का ड़र नहीं, उस से ड़रते रहो, यत: वह कभी भी कोई भी अपराध कर सकता है ।

क्यां ऐसा नहीं लगता, कि उक्त शिक्षा से देश में भयजनक व हानिकारक लोगों की वृद्धि होगी ?

★ वे अपने आप को अतीत की बेडियों व बोझ से मुक्त करना चाहते थे - उन तमाम बातों से जो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती । (पृ० २७)

चिंतन : जिस की पवित्र छाया में भारतीय जनता हजारो साल तक संतुष्ट व समृद्धतया जीती रही, वह पावन संस्कृति, सदाचार व आस्तिकता यदि बन्धन है, तो संसार में मुक्ति जैसी कोई चीज ही नहीं रहेगी । वर्तमान भारत की सारी समस्यायें भौतिकवाद से ही पेदा हुई है । भौतिकवाद की और छात्रों को आकर्षित करना यानि उन सारी समस्याओं को बढ़ावा देना ।

हमारे दादाजी के दादाजी हमें प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते, परन्तु हम उनका इन्कार नहीं

कर सकते, यतः उन की वंशपरम्परा स्वरूप परिणाम को हम देख सकते है । आत्मा, पुण्य, पाप, परलोक, आदि भी हमें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देते, तथापि हम उनका इन्कार नही कर सकते, यतः पूर्वजन्म कृत सुकृत-दुष्कृत के परिणाम स्वरूप संसार के सुख-दुःख को हम देख सकते है । पूर्वजन्म की स्मृति की प्रामाणिक घटनायें नियमित बनती रहती है, वार्तापत्रों में छपती रहती है व विज्ञानीओं का समर्थन भी पाती रहती है । अनेक सुशिक्षितोने कडी परीक्षा के बाद इन घटनाओं का और साथ ही साथ आत्मा, परलोक आदि तत्त्वो का भी स्वीकार किया है, जो एक दृष्टि से भौतिकवादने किया हुआ आस्तिकता का स्वीकार है ।

क्यां हम छात्रों को इन नयें आयामों की शिक्षा से वंचित रखेंगे ?

★ विवेकपूर्ण चेतना लुप्त होती गई और अतीत की अन्धी मूर्तिपूजा ने उसकी जगह ले ली । (पृ० ८)

चिंतन : ऐसी बाते सुनने पर अच्छी व अलंकारिक लगती है । इस बात का अर्थ यह हो सकता है कि मूर्तिपूजा में जिनकी आस्था है, वे अन्धे व अविवेकी है । अब जरा सोचो । बचपन में जिसने अपनी माँ को गवा दिया है, वह मानव सारी जिन्दगी तक अपनी माता का फोटो अपने पास रखता है, उसे देखता है, उस में जीवन्त माता की अनुभूति करता है, उस से वह प्रेम व वात्सल्य की प्राप्ति करता है, जो दूसरी कोई महिला उसे नहीं दे सकती । फोटो भले ही उस की जीवन्त माता नहीं है, तथापि यदि वह उस से प्रेम, वात्सल्य व जीवन की ऊर्जा प्राप्त करता है, तो क्यां हमे उसे अन्धा या अविवेकी कहेंगे ? यदि वह युवान अपनी माता की प्रतिमा बनाकर उसका सम्मान करे, तो क्यां वह कुछ गलत कर रहा है ?

वास्तव में फोटो या मूर्ति परोक्ष व्यक्ति का भावसान्निध्य प्राप्त करने के लिये एक अनुभवसिद्ध आलम्बन है, जिसे एक या दूसरे प्रकार से प्रायः सारी दुनिया ने अपनाया है । तो यदि इस आलम्बन का उपयोग कोई अपने आदरणीय महापुरुष से पवित्र गुणों की ऊर्जा व आध्यात्मिक आनन्द को प्राप्त करने के लिये करें, तो क्यां वह अविवेक या अन्धता हो सकती है ?

यदि सर्वेक्षण किया जायें, और विश्व के अधमतम अपराधीओं का इन्टरव्यू लिया जाये, तो ज्ञात होगा, कि उनमें से एक भी मूर्तिपूजक नहीं होगा । जिन्होंने परमात्मा की परम पावन ऊर्जा को प्राप्त किया हो, जिन्हों ने मूर्तिपूजा के माध्यम से विवेक व दिव्यदृष्टि की प्राप्ति की हो, वे भला अधम कृत्य कैसे कर सकते है ?

★ जैनधर्म और बौद्ध धर्म दोनों वैदिक धर्म से कटकर अलग हुए थे । और उनकी शाखाएँ थे । (पृ० ५७)

चिंतन : विश्व के मूर्धन्य विद्वानों ने जैन, वैदिक, आदि अनेक शास्त्रों व अन्य प्रमाणों का निरीक्षण करके एकमत से इस बात का स्वीकार किया है, कि जैन धर्म पूर्णतया स्वतंत्र व मौलिक धर्म है । वह किसी अन्य धर्म की शाखा नहीं है । वेदों एवं पुराणों में जैन तीर्थंकरों

व जैन श्रमणों के विषय में सम्मानपूर्ण उल्लेख प्राप्त होते है । जो इस बात के सबलतम प्रमाण है, कि जैन धर्म वेदों से भी प्राचीन है । इस धर्म को वैदिक धर्म की शाखा मानना यह एक गलतफहमी है, जिस का छात्रों में प्रसार करना उचित नहीं है । हमारा तो यही कर्तव्य है की छात्रों को भारतीय संस्कृति, धर्म आदि के विषय में यथार्थ प्रामाणिक ज्ञान दे ।

★ उन्होंने वेदों को प्रमाण नहीं माना । (पृ० ३७)

चिंतन : जैन धर्म किसी का विरोध या खंडन करना नहीं चाहता, किन्तु दुसरें की दृष्टि को परखना, और उसका सम्मान के साथ समन्वय करना चाहता है । भगवान श्री महावीरस्वामी के पास इन्द्रभूति गौतम आदि ११ ब्राह्मणों ने दीक्षा ली थी । दीक्षा के पूर्व उन्होंने अपने वेदों के संशय प्रभु से पूछे थे । प्रभु ने समाधान करते हुए एक को भी ऐसा नहीं कहा कि वेद अप्रमाण है, किन्तु कहा कि – **वेयपयाणमत्थं ण याणसि तेसिमो अत्थो** – 'तुम वेदों के पदों के अर्थ को नहीं समजे हो, इसी लिये तुम्हें यह संशय हुआ है । मैं तुम्हे बताता हूँ, कि उनका क्यां अर्थ है ।' प्रभु ने प्रेम व करुणा से उनके समक्ष सम्यक् वेदार्थ का प्रतिपादन किया । वे सन्तुष्ट हुए व उन्होंने भगवान महावीरस्वामी के शिष्यत्व का स्वीकार किया ।

स्वयं सर्वज्ञ होते हुए भी भगवान श्रीमहावीरस्वामी की यह उदार दृष्टि थी । यदि जैन धर्म के प्राचीन शास्त्रों में भी सम्मान व समन्वय की ही उदार दृष्टि के दर्शन होते है, तो उक्त प्रतिपादन कैसे किया गया, यह बात समज में नहीं आ रही है ।

★ आदि कारण के बारे में वे या तो मौन हैं या उसके अस्तित्व से इन्कार करते हैं। (पृ० ३७)

चिंतन : बिलकुल अतिरंजितता के बिना कहूँ तो जैन धर्म में विश्वव्यवस्था, क्षेत्र, काल आदि का जो सूक्ष्मतम निरूपण किया गया है, वैसा शायद अन्य कोई भी धर्म में नहीं किया गया है । वनस्पतिसजीवता, पुद्‌गलपरिणति, जातिस्मरणज्ञान, अवधिज्ञान, वैक्रियलब्धि आदि अनेक जैन सिद्धान्त वैज्ञानिक परीक्षणों से प्रमाणित हो रहे है । अमरिका, केनेडा, जर्मनी, जापान आदि अनेक देशों में जैन साहित्य पर गहन संशोधन हो रहा है । इस साहित्य के अध्ययन के लिये समस्त विश्व में संस्कृत, प्राकृत व अर्धमागधी भाषाओं के छात्रों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुइ है ।

जैन धर्मने 'आदि कारण' के विषय में स्पष्ट प्रतिपादन किया है – **न कदाचिदनीदृशं जगत्** – यह जगत अनादिकाल से ऐसा ही है । डार्विन का जो उत्क्रान्ति सिद्धान्त सालो साल पढाया जाता है, वह एक कल्पनामात्र है, जिससे अनेक उच्चतम आधुनिक विज्ञानी सहमत नहीं है । पहले मुर्गी या पहले अण्डा ? इस प्रश्न का क्यां जवाब हो सकता है ? यह दोनों ही अनादि परम्परा से प्रवाहित है । मुर्गी से ही अण्डा हो सकता है, न पेड से, न किसी बेक्टेरिया से । मनुष्य से ही मनुष्य हो सकता है, न बैल से, न बन्दर से । फिर भले ही अरबों सालों

की प्रक्रिया की कल्पना क्यों न की जाये ? कल्पना आखिर कल्पना ही रहती है ।

प्राचीनतम बौद्ध साहित्य में उल्लेख है कि 'भगवान महावीरस्वामी सर्वज्ञ है' - इस बात का गौतम बुद्ध ने भी स्वीकार किया था । आज अनेक विज्ञानी इसी स्वीकार की दिशा में प्रगति कर रहे है ।

खास ध्यान खिंचनेवाली बात तो यह है कि लेखक ने स्वयं-या तो ...हैं या...है - ऐसा कहकर जैन धर्म की मान्यता के विषय में अपने अज्ञान का स्वीकार किया है और केवल दो कल्पनायें की है, जिनमें से किसे सच समजा जायें, वह छात्रों की समस्या बनी रहती है, तो ऐसी शिक्षा से उनको क्यां लाभ होगा ? सारे विश्व में हजारों-लाखों विद्यार्थी गहन जैन तत्त्वज्ञान की प्राप्ति कर रहे है, व सृष्टि के सत्यों का ज्ञान पा रहे है, तब हमारे छात्रों को उस महान तत्त्वज्ञान से वंचित रखकर ऐसी सांशयिक शिक्षा देकर हम क्यां साबित करना चाहते है ?

लेखकश्री के प्रति हमारा कोई विरोध नहीं है । उन्हें भारत के विषय में जो जानकारी थी, वह अपने जैल-वास के दौरान उन्होंने अक्षरांकित की । मुझे पूरा विश्वास है कि यदि यह प्रयास उन्होंने एक पाठ्यपुस्तक के लिये किया होता तो उन्होंने अन्य विषयों के सहित जैन शास्त्रो का गहन अध्ययन करके उसके विषय में लिखा होता । किन्तु उन्होंने सहज भाव से इस कृति की रचना की, न कि पाठ्यपुस्तक की । अब यदि पाठ्यपुस्तक मंडल इस कृति को पाठ्यपुस्तक बनाना चाहता है, तो उस का दायित्व बनता है कि इस पुस्तक में प्रतिपादित सर्व विषयों के लिये पर्याप्त शोध की जाये । इसके लिये प्रत्येक विषयों के निष्णातों की राय ली जाये ।

★ जैन धर्म के संस्थापक महावीर (पृ० ३७)

चिंतन - जिसने जैन धर्म के विषय में थोडा भी अध्ययन किया हो वह ऐसे शब्द कह ही नही सकता । जैन धर्म में एक विराट कालमान का प्रतिपादन किया गया है, जिसे उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी कहते है । इस प्रत्येक काल में २४ तीर्थंकर होते है । भगवान श्रीमहावीरस्वामी २४ वे तीर्थंकर थे । अनादि काल में ऐसे अनंत २४ तीर्थंकर हो चूके । इस काल के प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव थे, जिनका ऋग्वेद व पुराणो में गौरवपूर्ण उल्लेख उपलब्ध होता है ।

इस तरह जैन धर्म शाश्वत है, एवं अनादि काल से प्रवाहित है, प्रत्येक तीर्थंकर इस धर्म का उपदेश देते है, किन्तु उन्हें इस धर्म के संस्थापक नहीं कह सकते ।

★ जैन धर्म, जो अपने मूल धर्म के विरोध में खडा हुआ था । (पृ० ३९)

चिंतन - उपरोक्त प्रतिपादन का एक भी शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है । जब कि जैनधर्म की शाश्वतता व मौलिकता के अनेक प्रमाण प्रस्तुत हो चूके है ।

★ महाराणा प्रताप की अभिमानी व अदम्य आत्मा को झुकाने में अकबर को सफलता न मिली । (पृ० ८०)

चिंतन – इस प्रतिपादन के पूर्व अकबर बादशाह की पर्याप्त प्रशंसा की गई है, जिस की तुलना में राजस्थान के गौरव व सारे भारत के लिये आदरणीय महाराणा प्रताप के लिये केवल दो वाक्य कहे गये है । जिसमें से पहला वाक्य यही है । इस स्थिति में ऐसा लग रहा है कि अकबर को जो निष्फलता मिली उस पर यहा अफसोस व्यक्त किया गया है । यदि ऐसा न होता तो 'अभिमानी व अदम्य' इन शब्दों का जगह पर स्वाभिमानी या आत्मगौरवयुक्त व शूरवीर या महाप्रतापी जैसे शब्दो का प्रयोग करना अनुरूप हो सकता था ।

★ महाराणा प्रतापने अकबर को विदेशी विजेता समजा, उनसे औपचारिक संबंध बाँधने से बजाय जंगल में मारे मारे फिरना बेहतर समजा । (पृ० ८०)

चिंतन – क्यां अकबर को विदेशी समजना व उसके अंकुश में न आना, यह महाराणा प्रताप की भूल थी ? अकबर के गुणानुवाद में पूरे दो पन्ने व भारत की शान जैसे महाराणा प्रताप के लिये केवल दो वाक्य, वो भी ऐसे जिनसे उनके गौरव की अभिव्यक्ति नहीं हो रही है, अपि तु उनकी प्रेक्षाशक्ति पर संशय हो रहा है, और उनका स्वमान व संस्कृतिप्रेम अनादरपात्र हो रहा है ।

महाराणा प्रतापने जो किया व न केवल उचित था, अपि तु समग्र देश व विश्व के लिये आदर्शरूप था । इसी लिये आज सैंकड़ो साल बाद भी भारतीय जनता उनके निरुपम गुणों का सम्मान कर रही है । व्यक्ति अपने गुणों से ही महान बन सकती है, न कि साम्राज्य के विस्तार से । याद रहे, महाराणा प्रताप से भी अधिक साम्राज्य अकबर का था, और उससे भी अधिक अंग्रेजो का, तथापि न आज अकबर की पूजा हो रही है, न अंग्रेजो की । महाराणा प्रताप के सत्कार की तो क्या बात कहे, उनके घोडे तक की प्रतिमा बनाकर भारतीय जनताने उसे अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि दी है । आज भी किसी 'चेतक' सर्कल से गुजरते लोग उसे देखते है, और उनके स्मृतिपट पर महाराणा प्रताप के अलौकिक शौर्य व संस्कृतिप्रेम का एक इतिहास खडा हो जाता है । उनका ह्रदय एक रजपूत राजा की गौरवगाथा और एक अश्वरत्न की स्वामिभक्ति के प्रति झुक जाता है । तो क्यां यह भारतीय जनता की भूल है ?

हमें तो इस बात का आश्चर्य हो रहा है कि केन्द्र सरकार या राजस्थान सरकार ने इस पुस्तक को पाठ्यपुस्तक का स्थान देने से पहले इस का निरीक्षण नहीं किया होगा ? संपादकश्री व सलाहकारश्री आदि कमिटीने वास्तविकता व जनता की भावना का खयाल नहीं किया होगा ?

महाराणा प्रताप तथा छत्रपति शिवाजी महाराज तो भारतीय इतिहास के गौरवशाली आधारस्तम्भ है । उन्होंने धर्म व संस्कृति की रक्षा करके इस देश की उत्कृष्ट सेवा की है । उन की प्रशंसा में जो पुस्तक मौन जैसी है, उस पुस्तक के लिये मध्यस्थ इतिहासकारों व मनीषीओं का प्रामाणिक अभिप्राय क्यां होगा ?

★ महिलाओं की पर्दा प्रथा से सामाजिक विकास में रुकावट आयी ।

चिंतन : पर्दा रखना या नहीं, यह महिला की इच्छा की बात है । पर्दा रखने या न रखने पर उसे बाध्य नहीं किया जा सकता । जहा तक सामाजिक विकास का प्रश्न है, तो इस के लिये हमें पहले विकास की परिभाषा निश्चित करनी होगी । एक बाजू प्राचीन भारतीय संस्कृति की प्रेमी ऐसी लाखों-करोड़ों महिलायें है, जो अपनी इच्छा से पर्दा प्रथा का आदर करती है । और दुसरी ओर अन्य महिलायें है, कि जिन्होंने अपनी इच्छा से वस्त्र प्रथा को भी शिथिल कर दिया है । पर्दा-प्रथा में जी रही महिलायें सफर में एवं जाहिर स्थानों पर अपने आप को सुरक्षित महसूस करती है । उनका वैवाहिक जीवन सुखी व संतुष्ट होता है । न उनके पति कभी उन्हें शंका की दृष्टि से देखते है, न ही उन के पति के प्रेम व सम्मान में कमी आती है ।

दुसरी ओर जिन्होंने पर्दा-प्रथा का आदर नहीं किया, वे सफर में व जाहिरस्थानो में अपने आप को असुरक्षित महसूस करती है । यदि परीक्षण किया जाये, तो ज्ञात होगा की बलात्कारों की महत्तम घटनायें बेपर्दा महिलाओं के साथ हो रही है । नारी उद्धार के जो आगेवान महोदय आज भी पर्दा-प्रथा का विरोध कर रहे है, वे वस्त्र-स्वातन्त्र्य के नाम पर उस संस्कृति का खून कर रहे है, जो हजारो सालो से नारी का रक्षाकवच बनी रही है, उन्हें यह बात पर चिंतन करने की आवश्यकता है, कि क्यां हम नारी का विकास कर रहे है या विनाश ?

जब स्थिति यह है, तब हमें इस बात का गौरव के साथ स्वीकार करना चाहिये, कि हमारी संस्कृति अपने आप में विकसित है । सुरक्षा, शुद्ध प्रेम, सुखी पारिवारिक जीवन, संतोष - यह सब इसी संस्कृति की छाया में संभवित है । इस सत्य को समज कर आज पश्चिमी देशों की जनता भारतीय संस्कृति की ओर अभिमुख हो रही है, तब हम हमारी संस्कृति से विमुख हो, यह न केवल मूर्खता है, अपि तु आत्मघात भी है ।

इस स्थिति में विद्यालयों में यह सीखाना कि 'पर्दा-प्रथा से सामाजिक विकास में रुकावट आती है' इस का क्यां अर्थ हो सकता है व उसका क्यां परिणाम हो सकता है, वह सुज्ञ वाचक स्वयं समज सकते है ।

उपसंहार

मेरा भारत महान । भारत देश इस लिये महान नहीं है कि वह 'मेरा' है । किन्तु इस लिये महान है कि उस के धर्म, संस्कृति व नैतिक मूल्यों का सारी दुनिया में जवाब नहीं है । यदि भारत को अपनी महानता की सुरक्षा करनी है, तो उसे अपने मूलभूत धर्मों, गौरवपूर्ण संस्कृति और एक तंदुरस्त व स्वस्थ-सुखी समाज के लिये प्राणवायु जैसे नैतिक मूल्यों की रक्षा करनी चाहिये और उसके लिये पाठ्यपुस्तकों में इस उद्देश्य को सिद्ध करे ऐसी शिक्षा को ही स्थान देना चाहिये ।

● ● ●

आर्ष विश्व

आचार्य कल्याणबोधि

जैन धर्म और भगवान महावीरस्वामी

जैन धर्म यह एक स्वतन्त्र एवं पूर्णतया मौलिक धर्म है। जिसका प्राच्यतम काल में अन्य धर्मोंने भी आदर किया था। इस बात का सबलतम प्रमाण वेदों व पुराणों में प्राप्त जैन धर्म संबंधित गौरवपूर्ण उल्लेख है। जैन धर्म के अनुसार एक विराट कालमान जिसे उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी कहा जाता है, उस में २४ तीर्थंकर होते है। भगवान महावीरस्वामी २४ वे तीर्थंकर थे। आज तक अनंत २४ तीर्थंकर हो चूके। ऋग्वेद में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का सम्मान के साथ उल्लेख व वर्णन किया गया है।

भगवान महावीरस्वामी के माता-पिता त्रिशला रानी व सिद्धार्थ राजा थे। जो २३वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी थे। इस तरह अनादि काल से प्रवाहित जैन धर्म भगवान श्रीमहावीरस्वामी के पूर्व भी अखण्ड रूप से प्रचलित था। भगवान श्रीमहावीरस्वामी एक राजकुमार होते हुए भी अत्यंत विरागी, गुणवान एवं करुणा के धारक थे। समस्त विश्व को सर्व दुःखो से मुक्त करने की पवित्र भावना से उन्होंने ३० वर्ष की युवा वय में राज्यसुख का त्याग किया, पूर्णतया अहिंसामय निष्पाप जीवन की प्रतिज्ञास्वरूप दीक्षा का स्वीकार किया और अत्यंत दुष्कर साधना का प्रारम्भ किया। विश्व का कल्याण वही व्यक्ति कर सकती है, जो स्वयं पूर्ण हो। भगवान महावीरस्वामी की कठिन आत्मसाधना का आधार उनकी विश्वोपकार की भावना थी। उनकी साधना लगातार साडे बारह साल तक चलती रही। जिस के दौरान वे कभी भी लेटकर सोये तो नहीं, बैठे तक नहीं। वे दिन-रात कायोत्सर्ग (एक विशिष्ट ध्यानयोग) में मग्न रहे। अज्ञानवश कइ लोगों ने एवं पशु-पक्षी आदि ने उनको बेहद सताया, अनेकशः उनके प्राण लेने की कोशिश की गई। प्रबल शक्ति होने पर भी भगवान महावीरस्वामी ने उन सर्व कष्टों को न केवल समभाव से सहन किया, पर उन दुष्टों के प्रति भी पूर्ण करुणा धारण की। भगवान महावीरस्वामी की इसी करुणामय दृष्टि से अनेक दुर्जन भी सज्जन एवं महान बन गये। साडे बारह साल के इस विराट साधनाकाल में प्रभु ने केवल ३४९ दिन ही भोजन लिया था। उस के अतिरिक्त सर्व उपवास किये थे, वे भी निर्जल। अर्थात् कुल ३४९ दिन के अतिरिक्त प्रभु ने एक भी दिन न अन्न का दाना भी लिया था, न पानी का बुंद भी।

साडे बारह साल के बाद ऋजुवालुका नदी (बिहार) के किनारे पर भगवान श्रीमहावीरस्वामी विशुद्धतम ध्यान की धारा में थे तब उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ । यह सर्वज्ञता की उपलब्धि थी, जिस के बल से उन्होंने विश्वकल्याण के मार्ग को देखा और उसका यथार्थ उपदेश देना शुरू किया । विश्व के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म जीवों का स्पष्ट प्रतिपादन, सर्व जीवो की रक्षा की परम पवित्र भावना और उत्कृष्ट अहिंसामय जीवन की पालना यह भगवान श्रीमहावीरस्वामी के उपदेश की विशिष्टतायें है ।

भगवान श्रीमहावीरस्वामी ने जो उपदेश दिया, वह विश्वशांति की आधारशिला बन सकती है । उन्होंने कहा, वह तूँ ही है, जिसे तूँ मारना चाहता है । तूँ सर्व जीवों को अपने समान देख । दुःख या मृत्यु जैसे तुझे पसंद नहीं है, वैसे उन्हें भी पसंद नहीं है । तूँ दुसरों के प्रति ठीक ऐसा ही व्यवहार कर, जो तूँ खुद अपने लिये चाहता है ।

भगवान श्रीमहावीरस्वामी के इस अहिंसा, प्रेम और करुणामय उपदेश से प्रभावित होकर लाखों लोगोने अपने जीवन से हिंसा, क्रोध, लोभ, हवस आदि दुर्गुणों को दूर किया । युद्धों व विवादों के स्थान पर शान्ति और प्रेमभावना का प्रसारण हुआ । सर्वज्ञता के प्रकाश में प्रभु ने विश्व के गहन सत्य को देखा, और उसका यथार्थ प्रतिपादन किया, जो आज भी विराट जैन साहित्य में सुरक्षित है, और समग्र विश्व के अनेकानेक विद्वानों को आकर्षित कर रहा है ।

भगवान श्रीमहावीरस्वामी की प्रेम और करुणाभावना का उपहार आज भी जैन जनता में सुरक्षित है । जैन साधु-साध्वी आज भी पूर्ण अहिंसामय जीवन जीते है । वे न वाहन का उपयोग करते है, न इलेक्ट्रीसिटी का । वे भारतभर में पदयात्रा करते है, और प्रेम, शांति व करुणा का उपदेश देते है । उन के उपदेशने जनकल्याण के कार्यो में कीर्तिमान बनायें है । नदी की बाढ़ हो या धरतीकंप, त्सुनामी का प्रकोप हो या अकाल...समस्त जनता एवं पशु तक की सहाय के लिये जैनों की ओर से एक ही दिन में लाखों और करोड़ो रूपये की न केवल सहाय आ जाती है, जैन युवा कार्यकर्ताएँ अपने घर-परिवार-व्यापार आदि को छोड़कर आपत्तिग्रस्त विस्तार में स्वयं सहायकार्य में लग जाते है । जीवदया, समाज-कल्याण, शैक्षणिक सुविधाएँ, अस्पतालनिर्माण, मेडिकलकेम्प आदि में जैनों का उल्लेखनीय योगदान रहता है, जिस का आधार भगवान महावीरस्वामी व उनका प्रेम व करुणामय उपदेश है ।

भारत के लोकप्रिय पूर्व प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने कहा था कि जैनधर्म विश्वधर्म बनने के लिये योग्य है । विश्वप्रसिद्ध चिंतक ज्योर्ज बर्नाड शो ने कहा था कि मैं अपना अगला जन्म एक जैन परिवार में लेना पसंद करूंगा । जैन धर्म की उत्कृष्ट

अहिंसामय दृष्टि ने महात्मा गांधीजी को भी पर्याप्त प्रभावित किया था ।

आज भी देलवाडा, राणकपुर, पालीताणा जैसे विश्वप्रसिद्ध तीर्थों, जिनमंदिरों की शृंखलायें, अति विराट प्राच्य साहित्य, प्राचीन परम्परा का विशुद्ध श्रमण जीवन व भगवान श्रीमहावीरस्वामी की करुणा की जीवंतता जैन धर्म की गौरवप्रद संपत्ति है, जो विश्व को आश्चर्यचकित कर रही है ।

इस तरह जैन धर्म अनादिकाल से प्रवाहित एक शाश्वत व मौलिक धर्म है । संस्कृत के 'हिण्ड्' धातु से हिंदू शब्द बना है, जिसका अर्थ है चलना । आत्मा इस लोक से परलोक में प्रस्थान करती है, ऐसा जो भी मानते है, वे हिंदू है । एक दुसरी परिभाषा के अनुसार जो हिंसा से दुःखी होते है, अहिंसा को परम धर्म समजते है, वे हिंदू है । वे चाहे वैदिक हो, वैष्णव हो, शीख हो, पारसी हो, जैन हो या बौद्ध हो, वे सब 'हिंदू' है । राष्ट्रीयता की महान भावना हिंदू प्रजा की इस परिभाषा में निहित है । जिसमें प्रत्येक धर्म की स्वतंत्रता भी सुरक्षित है, एवं प्रेम व शांति से पूर्ण राष्ट्रीय एकता की भावना भी ।

આર્ષ વિશ્વ

આચાર્ય કલ્યાણબોધિ

કથા....અંતરંગ વિશ્વની

(ઉપમિતિ-૧૦૦૮ વર્ષ પ્રાચીન એક અનુપમ કથા)

એક એવું માધ્યમ જે સહજ ઔત્સુક્ય જન્માવે, આતુર અને ઉત્સુક બનાવે, આબાલવૃદ્ધ સર્વના રસનો વિષય બને, એનું નામ છે...કથા. માટે જ અનાદિકાળથી કથાનું એક સરખું આકર્ષણ રહ્યું છે. ચાહે દાદીમાની વાતો હોય કે સચિત્ર બાળપુસ્તક હોય, નાટકનો રંગમંચ હોય કે ચલચિત્રનો પડદો હોય, નોવેલ-બુક હોય કે રામાયણ-સત્ર હોય, કથા સર્વવ્યાપી છે.

અહીં એક એવી કથાની વાત કરવી છે, જે ઉપરોક્ત સર્વકથામાં વ્યાપ્ત છે. જીવનની પ્રત્યેક ઘટના જે કથા સાથે વણાયેલી છે. મારી પણ એ જ કથા છે, ને તમારી પણ. જેણે આ કથાને નથી જાણી, એણે કશું જ નથી જાણ્યું. દુન્યવી ડિગ્રીઓ એનું ગૌરવ નહીં, પણ કલંક છે.

વિશ્વવ્યવસ્થા અને વિશ્વસંચાલનનું રહસ્ય જે કથામાં રસપ્રદ રીતે વ્યક્ત થયું છે. આપણે જે જે પ્રસંગમાંથી પસાર થઈએ છીએ, તે એક એક પ્રસંગનું જે કથામાં પોસ્ટમોર્ટમ થયું છે, જે કથાના પરિશીલન બાદ સમગ્ર જગત આરપાર દેખાય છે...આત્માની પારદર્શી દૃષ્ટિના આવરણો વિદાય લે છે...પરમ શાંતિ આત્માની સહચરી બને છે...પરમ સુખ સ્વાધીન બને છે...વિશ્વમૈત્રીની ભાવના હૃદયમાં પ્રતિષ્ઠા પામે છે...જીવમાત્રમાં રહેલા શિવસ્વરૂપનો સાક્ષાત્કાર થાય છે...પરમ સમાધિની સ્થિતિ સહજ બને છે અને આત્મા અહીં જ જીવન્મુક્તિના પરમાનંદને અનુભવે છે.

એ કથાનું નામ છે 'ઉપમિતિ ભવ પ્રપંચ કથા.' જેના લેખક છે પરમ કારૂણિક શ્રમણ શ્રી સિદ્ધર્ષિ ગણિ. વિ.સં. ૯૬૨માં સંસ્કૃત ભાષામાં આ કથાનું સર્જન થયું છે. જેઠ સુદ ૫ ના દિવસે આ કથાનો ૧૦૦૮ મો જન્મદિન આવી રહ્યો છે. જન્મદિન એનો જ મનાવવા યોગ્ય છે, જેણે પરોપકાર કર્યો હોય, જેણે વિશ્વનું મંગલ કર્યું હોય. આ કથાએ આજ સુધીમાં હજારો શ્રોતાઓને પારદર્શી દૃષ્ટિનું દાન કરીને જીવન્મુક્તિનો પરમાનંદ આપ્યો છે. સંક્લેશોની હૈયાહોળીમાંથી મુક્ત કરીને

સમાધિની સુધાવૃષ્ટિ આપી છે. આત્માનો આમૂલચૂલ ઉદ્ધાર કર્યો છે.

જે વિશ્વને આપણે જોઈ રહ્યા છીએ, એ બહિરંગ વિશ્વ છે. એના વણઉકેલ્યા અગમ કોયડાઓના સમાધાન અંતરંગ વિશ્વમાં રહેલા છે. જ્યાં સુધી આત્માને અંતરંગ વિશ્વનું દર્શન ન થાય, ત્યાં સુધી એ છતી આંખે અંધ રહે છે, તીવ્ર બુદ્ધિ હોવા છતાં મૂર્ખ રહે છે. બહિર્દૃષ્ટિથી ઘટનાઓના અર્થઘટન અને વ્યક્તિઓના મૂલ્યાંકન કરે છે. અને પરિણામે ચિંતા, સંતાપ, કલહ, અશાંતિ, અસંતોષ, અનેક શારીરિક-માનસિક રોગોથી માંડીને આત્મઘાત અને દુર્ગતિ સુધીના ભયાનક ફળોને ભોગવે છે.

'ઉપમિતિ' કથા આત્માની અનાદિની અંધતાને દૂર કરે છે. જાણે એક દિવ્ય અંજન કરે છે અને આત્માને અંતરંગ વિશ્વનો સાક્ષાત્કાર થાય છે. એક બાજુ અનંત ગુણસમૃદ્ધિ દેખાય છે અને બીજી બાજુ અનંત દોષદાવાનળ દેખાય છે. અંતરંગ દોષોમાં સર્વ દુઃખોના મૂળ દેખાય છે અને અંતરંગ ગુણોમાં સર્વ સુખોની પ્રાપકતા દેખાય છે. વિશ્વનો પ્રત્યેક જીવ વાસ્તવમાં શુદ્ધસ્વરૂપી છે. આત્મા અને પરમાત્મા વચ્ચે વાસ્તવમાં કોઈ જ ભેદ નથી. કુશળ શિલ્પી શિલામાં જ શિલ્પના દર્શન કરે છે, એ જ રીતે જ્ઞાનીઓ આત્મામાં જ પરમાત્માના દર્શન કરે છે.

એક પ્રદર્શન-હોલમાં લોકોના ટોળે ટોળા એક શિલ્પને ઘેરી વળ્યા, આબેહુબ ને જીવંત એ શિલ્પ. 'અદ્ભુત...અદ્ભુત'ના ઉદ્ગારો સરી રહ્યા છે. બધા આફરીન આફરીન છે. એ સમયે ત્યાં આગમન થયું એના સર્જકનું. કોઈએ એમને ઓળખી કાઢ્યા. લોકોને જાણ કરી. અભિનંદનો વરસી રહ્યા છે. પણ શિલ્પીની સહજ નમ્રતા દાદ માંગી લે તેવી છે. એક કલારસિકે અત્યંત જિજ્ઞાસા સાથે પ્રશ્ન કર્યો - "તમે આવું અદ્વિતીય સર્જન શી રીતે કરી શક્યા ?" શિલ્પીએ એ જ નમ્રતા સાથે જવાબ આપ્યો, "મેં સર્જન કર્યું જ નથી." સહુના ચહેરા પર પ્રશ્નાર્થ તરવરી રહ્યો. શિલ્પીએ સ્પષ્ટતા કરી. "મેં તો માત્ર વિસર્જન કર્યું છે. મેં અવશેષનું વિસર્જન કરી દીધું. શિલ્પ સ્વયં પ્રગટ થઈ ગયું."

અવશેષ દૂર થઈ જાય, તો શિલા એ જ શિલ્પ છે. દોષો દૂર થઈ જાય, તો આત્મા એ જ પરમાત્મા છે. જીવનનું સાર્થક્ય સર્જનમાં નહીં, વિસર્જનમાં છે. અજ્ઞાની સમગ્ર જીવન સંપત્તિ, સાધનો વગેરેના સર્જનમાં લગાડી દે છે ને અંતે બધું જ મૂકીને અસહાયપણે વિદાય લે છે, સાથે હોય છે માત્ર દોષો. ભયાનક દુઃખમય

હોય છે એનો પરલોક. લીમડો વાવ્યા પછી આમ્રફલોની આશા વ્યર્થ છે. જ્ઞાની સમજે છે, કે વિસર્જન જેવું સર્જન બીજું કોઈ જ નથી. દોષોનું વિસર્જન એ જ આત્મગુણોનું સર્જન છે. ઉપનિષદોનો સંદેશ યાદ આવે છે - **उपाधिनाशाद् ब्रह्मैव ।**

દોષોનું વિસર્જન એ જ દુઃખોનું વિસર્જન છે. આના સિવાય દુઃખમુક્તિનો બીજો કોઈ ઉપાય નથી. આગમ આ જ વાત કહે છે - **रागस्स दोसस्स य संखएण एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ।** બાવળ પર પ્રેમ રાખીને કાંટાઓની ફરિયાદ કરવી જેમ વ્યર્થ છે, તેમ દોષો સાથે દોસ્તી રાખીને દુઃખોની ફરિયાદ કરવી પણ વ્યર્થ છે. આગમ કહે છે - **जुद्धारिहं खलु दुल्लहं ।** અતિ દુર્લભ આ મનુષ્ય દેહનું સાફલ્ય અંતર્યુદ્ધ કરવામાં છે, પરમ પરાક્રમથી દોષોને પરાજિત કરીને જ્વલંત વિજય મેળવવામાં છે.

'ઉપમિતિ' આ જ તત્ત્વને રોચક કથા દ્વારા પ્રસ્તુત કરે છે. લગભગ સોળ હજાર શ્લોક પ્રમાણ આ ગ્રંથ આઠ પ્રસ્તાવોમાં વિભક્ત છે. એક એક પ્રસ્તાવ આવતો જાય છે...એક એક ઘટનાનું જાણે જીવંત પ્રસારણ (લાઈવ ટેલિકાસ્ટ) થતું જાય છે, ને સંસારનો પર્દાફાશ થતો જાય છે. મનોમંથનને આલંબન મળતું જાય છે. હિંસા અને ક્રોધે કરેલી નંદિવર્ધન રાજકુમારની દુર્દશા...અહંકાર અને અસત્યનું રિપુદારણ રાજાએ ભોગવેલ કડવું ફળ...ચોરી અને કપટથી નિર્મિત વામદેવની દર્દનાક કથા...લોભ અને મૈથુને કરેલા ધનશેખરની બરબાદી...મહામોહ અને પરિગ્રહે કરેલ ઘનવાહન રાજાનું સત્યાનાશ...

પળે પળે ઉત્તેજના ઉપજાવતી કથા ચાલતી રહે છે ને પડદાઓ ખસતા જાય છે...એક પછી એક....વાચક પ્રતીતિ કરે છે...આ તો મારી જ વાત...મારી જ કથા...હું જ નાયક...હું જ ખલનાટક. દુર્ભાગ્ય એ જ - આજ સુધી આનાથી અજાણ રહ્યો. સદ્‌ભાગ્ય એ જ - આજે આ પર્દાફાશ થયો. **યોગશાસ્ત્ર**ની સૂક્તિ યાદ આવે છે - **आत्माऽज्ञानभवं दुःख-मात्मज्ञानेन हन्यते ।** દુઃખનો જન્મ થાય છે આત્માના અજ્ઞાનથી ને દુઃખનો વિનાશ થાય છે આત્માના જ્ઞાનથી.

શાખા અને પ્રશાખાઓથી વૃક્ષ સમૃદ્ધ બને છે. કથા અને અવાંતરકથાઓએ આ ગ્રંથને સમૃદ્ધ બનાવ્યો છે. સ્પર્શસુખની આસક્તિએ કરેલ 'બાલ'ની વિડંબના આંચકો આપે છે...સ્વાદલોલુપતાએ કાઢેલ 'જડ'નું ધનોતપનોત કમકમાટી ઉપજાવે છે...સુગંધનાં આશિક 'મંદ'ની યાતના સ્તબ્ધ કરી દે છે...રૂપના માશુક 'અધમ'ની

દુઃખકથા લાલબત્તી ધરે છે...તો સંગીતના શોખીન 'બાલિશ'ની વ્યથા વિચારાધીન કરી દે છે. સંસારનો ગમે તેટલો રાગી આત્મા પણ આ કથાધારામાં પ્લાવિત અને આપ્લાવિત થાય એટલે એનું મન નિર્ણયબદ્ધ થયા વિના ન રહે, કે સંસારનું પ્રત્યેક સુખ દુઃખથી મળે છે, એ સુખ સ્વયં વાસ્તવમાં દુઃખરૂપ છે, ને એને ભોગવવાનું પરિણામ અનેકગુણ દુઃખ સિવાય બીજું કાંઈ જ નથી. આગમનું વચન છે - **खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा ।** સુખ ક્ષણમાત્રનું છે...દુઃખ દીર્ઘ-સુદીર્ઘ કાળનું છે.

કથાકારે માત્ર નકારાત્મક (નેગેટીવ) બાજુને જ નથી રજૂ કરી, બલ્કે સમાંતરપણે જ હકારાત્મક (પોઝિટીવ) બાજુ પણ એવી રીતે રજૂ કરી છે, કે વાચક મંત્રમુગ્ધ થઈ જાય. ગુણવાન બનવા માટે એના હૃદયમાં પ્રબળ ઝંખના જાગી જાય. ઉત્કૃષ્ટ ભોગસામગ્રીની વચ્ચે પણ મનીષીની નિર્વિકાર ચિત્તવૃત્તિ, વિચક્ષણનો જ્વલંત વિરાગ, બુધસૂરિનું નિરુપમ વચન, ઉત્તમની અદ્ભુત નિઃસંગતા ને કોવિદની અનાસક્તિ...એક એક ગુણનું દર્શન ભ્રામક સુખની દોડધામને સ્થગિત કરી દેવા સમર્થ છે. એ સ્રોતથી આત્માને કદી તૃપ્તિ મળવાની નથી જે આત્માની ભીતરમાંથી નથી નીકળ્યો. હજારો યયાતિઓ, દુર્યોધનો ને ગિઝનીઓ મૃગતૃષ્ણાની પ્યાસમાં જીવનભર દોડે ગયા છે...કસ્તૂરીમૃગની જેમ સુરભિની શોધમાં ભટકતા રહ્યા છે...પણ કોઈને ક્યાંય કશું હાથ લાગ્યું નથી, સિવાય પરસેવો, પરિશ્રમ ને પીડા. સુખ તો ભીતરમાં છે, એ બહાર ક્યાંથી મળે ?

'ઉપમિતિ' એ માત્ર કથાગ્રંથ કે ધર્મગ્રંથ નથી, સફળ જીવનની શૈલી છે...સુખ-શાંતિનો રાજમાર્ગ છે. આલોક અને પરલોકને સુખસમૃદ્ધ કરવાની કળા છે. કુશળ ડૉક્ટરો, બુદ્ધિશાળી વકીલો, અરબો-ખરબોના આસામીઓ, સ્વ-સ્વ ક્ષેત્ર (ફિલ્ડ)ના ખેલાડીઓ, તીવ્ર મેધાવી વેપારીઓ ને આઈ.ટી.ના માસ્ટર-માઈન્ડ વિદ્યાર્થીઓ...જેમની પાસે પણ સમજણશક્તિ છે, તે બધાને હાર્દિક આમંત્રણ છે...'ઉપમિતિ'ના અંતરંગ વિશ્વમાં પદાર્પણ કરવા...આપની બુદ્ધિની સાર્થકતા પણ આમાં જ છે, અને જીવનની સફળતા પણ.

આમાંથી જેમ જેમ પસાર થશો એટલે બાહ્ય પરિશ્રમ, સંશોધન, સર્જન, સત્તા, પ્રતિષ્ઠા, લોભામણી વસ્તુઓ બધું જ વ્યર્થ લાગશે...એક એક પ્રસ્તાવો આંતર-ગૂંચને ઉકેલતા જશે...હૃદયને પીગાળતા જશે...ને આઠમો પ્રસ્તાવ પરાકાષ્ઠાએ પહોંચશે, ત્યારે...થોડી પણ સંવેદનશીલતા હશે...તો આંસુઓનો બંધ

તૂટી પડશે...હીબકા ભરી ભરીને રડી પડાશે. ને એ અશ્રુઓની ઉષ્મા જ દોષો ને દુઃખોના દરિયાને સૂકવી દેવા સમર્થ બનશે.

આ ગ્રંથને તેના મૂળરૂપે - સંસ્કૃત ભાષામાં માણવાનો જે આનંદ અને જે અનુભૂતિ છે, તે વર્ણનાતીત છે. આમ છતાં જેઓ સંસ્કૃતભાષાના જાણકાર નથી, તેમના માટે સંતો અને સજ્જનોએ આ ગ્રંથનો અનુવાદ કર્યો છે. 'ઉપમિતિ' એ વિશ્વનો અદ્વિતીય રૂપક ગ્રંથ છે. વિશ્વના અનેકાનેક ભાષાઓમાં તેનો અનુવાદ થઈ ચૂક્યો છે. ગુજરાતી અનુવાદની પાંચ આવૃત્તિઓ પણ થઈ ગઈ છે. તો સંક્ષેપરૂચિ વાચકોને અનુલક્ષીને સંસ્કૃત અને ગુજરાતીમાં તેના સારોદ્ધારો પણ પ્રકાશિત થઈ ચૂક્યા છે. પશ્ચિમી વિદ્વાનો આ ગ્રંથની અસ્મિતા પર ઓવારી ગયા છે, ને આપણી દશા...ઘર કી મુર્ગી...

ચાલો, બધા લઈ ગયા, તમે રહી ગયા - આ સ્થિતિમાંથી બહાર નીકળીએ...આત્માર્થી બનીએ...આત્મકથાની અજાણતાના કલંકનું પ્રક્ષાલન કરીએ...ક્યાંક વાંચેલી આ પંક્તિઓ-

પાત્રો, સંવાદો ને પ્રસંગો છે છતાં,
જિંદગી, વાંચ્યા વગરની વારતા.

સવાલ માત્ર જિંદગીનો નથી, જનમો જનમનો છે. અનંત ભૂતકાળની ભૂલોને સમજીને અનંત ભવિષ્યકાળને સુધારવાનો છે. सुज्ञेषु किं बहुना ? બહુશ્રુત ગુરુ ભગવંતનું શરણ લઈએ....આ કથાનો રસાસ્વાદ લઈએ અને કૃતાર્થ બનીએ.

પરમ તારક સર્વજ્ઞવચન વિરુદ્ધ લખાયું હોય, તો મિચ્છામિ દુક્કડમ્

અવશેષ દૂર થઈ જાય,
તો શિલા એ જ શિલ્પ છે.
દોષો દૂર થઈ જાય.
તો આત્મા એ જ પરમાત્મા છે.

જીવનનું સાર્થક્ય
સર્જનમાં નહીં
વિસર્જનમાં છે.

એ સ્રોતથી તને કદી
તૃપ્તિ મળવાની નથી,
જે તારી ભીતરમાંથી
નથી નીકળ્યો.

ત્યારે
તૂટી પડશે
આંસુઓનો બંધ
ને રડી પડાશે
હીબકાં ભરી ભરીને.

આવી રહ્યો છે
૧૦૦૮ મો જન્મદિન
એ રીતે સામેલ થઈએ
કે આપણા
દેદાર પલટાઈ જાય.

●●●

આર્ષ વિશ્વ
આચાર્ય કલ્યાણબોધિ

આત્માની ઓળખાણ

બ્રહ્મસૂત્ર

એક સિંહનું બચ્ચું...હજી તો તાજું જન્મેલું છે...ને કોઈ કારણસર એના માતા-પિતાથી વિખૂટું પડી ગયું. યોગાનુયોગ એ જ અરસામાં ત્યાં કોઈ ભરવાડ ઘેટા-બકરા ચરાવવા આવ્યો. સિંહનું બચ્ચું એ ટોળામાં સામેલ થઈ ગયું. ઘેટા-બકરા ચરે છે, તેમ એ ય ચરે છે. ઘેટા-બકરા જેવો અવાજ કરે છે, તેવો એ ય કરે છે. ઘેટા-બકરા નજીવા કારણમાં ગભરાઈને ડરે છે, તેમ એ ય ડરે છે. દિવસો વીતતા જાય છે. બચ્ચું મોટું થતું જાય છે...પણ સિંહના ખોળિયે ઘેટું જ...

એક દિવસ...એ જંગલમાં ચરતું હતું. એકાએક એની સામે એક સિંહ આવી ગયો. બચ્ચું વિસ્મિત આંખે જોઈ જ રહ્યું, એનું મન ચકિત બન્યું. આ ?...આ તો હું જ ... એક જ ક્ષણ..ને વર્ષોની ભૂલ છતી થઈ ગઈ. સિંહની આંખો એને કહી રહી છે, 'મૂર્ખ !' આ શું ઘેટા-બકરાની જેમ ચારો ચરે છે ? તું ઘેટું પણ નથી, ને બકરું પણ નથી, તું તો સિંહ છે સિંહ. તારે આ રીતે બેં બેં ન કરવાનું હોય...તારે તો ગર્જના કરવાની હોય. તારે આમ ઠેકડા ન મારવાના હોય...તારે તો છલાંગ લગાવવાની હોય. કેટલો નાદાન છે તું ! કે પોતાને જ ઓળખતો નથી, ને એટલે જ આવી લજ્જાસ્પદ સ્થિતિમાં જીવી રહ્યો છે. બહાર નીકળ આ ટોળામાંથી, ને ચાલ મારી સાથે. સિંહે એક જબરદસ્ત ગર્જના કરી, ને બચ્ચાનું મનોમંથન નિર્ણાયક સ્થિતિને આંબી ગયું. એણે ય પ્રયાસ કર્યો ને જંગલ એની ગર્જનાથી ગુંજી ઉઠ્યું. ઘેટા-બકરા ઠેકડા મારતા મારતા ગામ ભણી નાસી રહ્યા છે ને બચ્ચું...ના, બલ્કે સિંહ છલાંગ લગાવીને એના 'વનરાજ'-પદને આંબી રહ્યો છે, જેના પર એનો જન્મસિદ્ધ અધિકાર છે.

સિંહની વાત પૂરી થાય છે, ને આપણી વાત શરૂ થાય છે. એ બચ્ચું એટલે આપણે પોતે જ. 'હું શરીર છું.' આ આપણો ભ્રમ છે. 'હું મરી જઈશ.' આ આપણો ભ્રમજનિત ડર છે. તુચ્છ વિષયોમાં - મનમાન્યા સુખસાધનોમાં પ્રવૃત્તિ એ આપણી 'ચારો ચરવાની ચેષ્ટા' છે. વ્યર્થ વચનપ્રલાપ અને દુઃખના 'ગાણાં' ગાવાની

વૃત્તિ એ 'બેં બેં' છે. નજીવા હર્ષ-શોકમાં ચિત્તક્ષોભ એ 'ઠેકડા' છે. આ બધી જ વિડંબનાના મૂળમાં છે આત્માનું અજ્ઞાન. બચ્ચું ત્યાં સુધી જ 'બકરી' છે, જ્યાં સુધી તેણે પોતાના 'સિંહસ્વરૂપ'ને ઓળખ્યું નથી. આત્મા ત્યાં સુધી જ દુઃખી છે, જ્યાં સુધી એણે પોતાના 'બ્રહ્મસ્વરૂપ'ને ઓળખ્યું નથી. માટે જ સર્વ શાસ્ત્રો અને સર્વ ઉપદેશોનું તાત્પર્ય આત્માને આત્મસ્વરૂપની ઓળખાણ કરાવવામાં જ રહેલું છે. બસ, એક વાર આત્મા એના બ્રહ્મસ્વરૂપને ઓળખી લે, પછી એનો ભ્રમ, ડર, ચારો, બેં બેં ને ઠેકડાં...બધું જ...છોડવું નહીં પડે...બલ્કે સહજ રીતે છૂટી જશે.

શ્રીબાદરાયણસૂત્રિત **બ્રહ્મસૂત્ર** આ જ તાત્પર્યથી બ્રહ્મસ્વરૂપનું દિગ્દર્શન કરી રહ્યું છે. **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ॥१॥** આ ઉપોદ્‌ઘાતથી શરૂ થતા આ સૂત્રમાં ખૂબ જ સંક્ષેપમાં ગંભીર અભિપ્રાય સાથે આત્માની ઓળખાણ કરાવવાનો પ્રયાસ કરાયો છે. 'હું કોણ ?' આ પ્રશ્નનો જવાબ જ્યાં સુધી ભ્રમાત્મક છે, ત્યાં સુધી દુઃખ છે. ભ્રમ છે, ત્યાં સુધી ભ્રમણ છે.

બ્રહ્મસૂત્ર - શાંકરભાષ્યમાં ભ્રમની સચોટ વ્યાખ્યા કરી છે. **अध्यासो नाम अतस्मिंस्तद्बुद्धिः ।** જે જે નથી, એને તે માનવું, એનું નામ ભ્રમ. 'હું' શરીર નથી, શરીરને 'હું' માનવું, એનું નામ ભ્રમ. આ ભ્રમમાંથી ચાર ભ્રાન્તિઓનો જન્મ થાય છે.

(૧) **બાહ્યધર્મોમાં આત્માધ્યાસ** - પુત્ર, પત્ની વગેરે સુખી કે દુઃખી હોય, તેનાથી હું સુખી કે દુઃખી છું, એવી ભ્રાન્તિ.

(૨) **દેહધર્મોમાં આત્માધ્યાસ** - શરીર જાડું / પાતળું / ગોરું / કાળું / રોગિષ્ટ હોય, તેનાથી હું જાડો / પાતળો / ગોરો / કાળો / રોગિષ્ટ છું, એવી ભ્રાન્તિ.

(૩) **ઇન્દ્રિયધર્મોમાં આત્માધ્યાસ** - ઇન્દ્રિયો વિકલ હોય, તેનાથી હું મૂંગો / કાણો / બહેરો છું, એવી ભ્રાન્તિ.

(૪) **ચિત્તધર્મોમાં આત્માધ્યાસ** - ચિત્તમાં કામના, હર્ષ, શોક વગેરે હોય, તેનાથી મને આ કામના, હર્ષ, શોક વગેરે છે, એવી ભ્રાન્તિ.

આત્માના સમસ્ત દુઃખોનું મૂળ ઉપરોક્ત ભ્રાન્તિઓમાં રહેલું છે. જ્યાં સુધી આ ભ્રાન્તિઓ અસ્તિત્વ ધરાવે છે, ત્યાં સુધી દુઃખવિનાશ શક્ય નથી. ને આ ભ્રાન્તિઓને દૂર કરવાનો એક માત્ર ઉપાય આત્મજ્ઞાન છે. માટે જ **ઉપનિષદો**નો ઉપદેશ છે -

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो

मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ॥ बृहदारण्यकोपनिषद् २-४-५॥

કર્તવ્ય છે આત્મદર્શન...આત્મશ્રવણ....આત્મમનન અને આત્મનિદિધ્યાસન. શાસ્ત્રોક્ત જ્ઞાન અને એ જ્ઞાનને અનુરૂપ આચરણથી જ્યારે આત્મજ્ઞાન આત્મામાં પરિણતિ પામે છે, ત્યારે આત્માની અસ્મિતા પૂર્ણ પરિવર્તન પામે છે.

विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य यथापूर्वं न संसृतिः ।

દેહ હશે, ત્યાં સુધી આત્મજ્ઞાની પણ સંસારમાં જ હશે, પણ એ સંસાર પૂર્વસંસારથી તદ્દન વિપરીત હશે. પુત્રમૃત્યુનો આઘાત આપઘાત સુધી પરિણમે, એ અજ્ઞાનીની દશા છે...ને એવા સમયે માત્ર ઋણાનુબંધના પૂર્ણવિરામનું દર્શન થાય, એ આત્મજ્ઞાનીની દશા છે. દશ કરોડ રૂપિયાનું નુકશાન કાચી પળમાં હૃદયરોગનો હુમલો લાવે, એ અજ્ઞાનીની દશા છે...ને એવા સમયે 'ભલું થયું ભાંગી જંજાળ'ના ઉદ્ગારો સરી પડે, એ આત્મજ્ઞાનીની દશા છે. કેન્સરનું નિદાન જીવતાં જ મારી નાખે, એ અજ્ઞાનીની દશા છે, અને આખું શરીર કેન્સરના કીડાઓથી ખદબદી રહ્યું હોય, ત્યારે માત્ર સાક્ષીભાવે રોગનું નાટક જોવું એ આત્મજ્ઞાનીની દશા છે. **જ્ઞાનસાર**ના ટંકશાળી વચનો યાદ આવે છે-

पश्यन्नेव परद्रव्य - नाटकं प्रतिपाटकम् ।

भवचक्रपुरस्थोऽपि, नामूढः परिखिद्यति ॥

સંસારચક્ર એ એક એવું શહેર છે, જેની ગલીએ ગલીએ પરદ્રવ્યનું નાટક ચાલી રહ્યું છે. શરીર, સંપત્તિ, ઘર, પરિવાર.. આ બધું જ પરદ્રવ્ય છે. અજ્ઞાની એમાં ભળે છે - એમાં લેપાય છે - એને પોતાનું માને છે, ને પળે પળે દુઃખી થાય છે. જ્ઞાનીમાં સમ્યક્ સમજ છે. એ જાણે છે, કે આમાં કશું જ મારું નથી. આ તો માત્ર એક નાટક છે. કોઈ નાટક કલાકોનું હોય છે, તો કોઈ નાટક વર્ષોનું. પણ નાટક એટલે નાટક, પડદો પડશે ને એમાંનું કશું જ નહીં રહે. નહીં પ્રિય હોય, નહીં અપ્રિય હોય. તો પછી શેના માટે રાગ-દ્વેષ કરીને દુઃખી થવું ? એક સ્વપ્ન આંખો ખુલે ને પૂરું થાય છે...એક સ્વપ્ન આંખો મીંચાય ને પૂરું થાય છે...સ્વપ્ન તો સ્વપ્ન જ. ક્યાંક વાંચી હતી આ પંક્તિઓ -

કોણ ? કોનું ? ને એ ય ક્યાં લગી ? ।
મુક સઘળી મમત, કોઈ તારું નથી. ॥

આત્મજ્ઞાની હસતો પણ નથી, ને રડતો પણ નથી. કારણ કે એ ઘટનાઓ સાથે ભળતો નથી. નાટકને એ નાટક જ સમજે છે, ને સ્વપ્નને સ્વપ્ન જ. માટે એ માત્ર પ્રેક્ષક બની રહે છે. સર્વ દુઃખોનું કારણ છે અંતર્ભાવ અને પરમાનંદનું મૂળ છે સાક્ષીભાવ. **नित्यतृप्तः...विज्ञानमानन्दं ब्रह्म...**આ શ્રુતિનિર્દિષ્ટ બ્રહ્મસ્વરૂપ આત્માના સાક્ષીભાવને આભારી છે. **णिरुवमसुहसंगया...**આ આગમપ્રતિપાદિત સિદ્ધસ્વરૂપનો આધાર આ જ સાક્ષીભાવ છે. આ સાક્ષીભાવનો આધાર છે આત્મજ્ઞાન. **અધ્યાત્મસાર**માં કહ્યું છે -

ज्ञाते ह्यात्मनि नो भूयो, ज्ञातव्यमवशिष्यते ।
अज्ञाते पुनरेतस्मिन्, ज्ञानमन्यन् निरर्थकम् ॥

જેણે આત્મજ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી લીધું છે, તેણે બીજું કોઈ જ જ્ઞાન મેળવવાનું બાકી રહેતું નથી, અને જેણે આત્મજ્ઞાન પ્રાપ્ત નથી કર્યું, તેનું બીજું બધું જ જ્ઞાન વ્યર્થ છે - ફોગટ છે. શિક્ષણના પરિપ્રેક્ષ્યમાં મહાત્મા ગાંધીજીના શબ્દો અહીં સ્મર્તવ્ય છે - ગામની ગલીઓની ગતાગમ નથી અને ઇંગ્લેંડની નદીઓના નામો ગોખી ગયો છે. જ્યાં સુધી આત્માની ઓળખાણ નથી થઈ, ત્યાં સુધી બીજી બધી જ ઓળખાણો કલંકરૂપ છે. ને એક વાર આત્માની ઓળખાણ થઈ જાય, ત્યારે આત્મગુણોની નિરૂપમ સમૃદ્ધિમાં ઝુમતા આત્માને બીજી કોઈ જ ઓળખાણોમાં રસ રહેતો નથી. જે મારું નથી...જેનાથી મને કોઈ લાભ નથી...એ મારા માટે છે જ નહીં. **ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या**- ની ભૂમિકા કેવી દિવ્ય છે ! કોઈ ચિંતકે ખરું જ કહ્યું છે -

સાચે નાહી જ નાખ્યું છે મેં એના નામનું ।
મારું નથી જે સ્વર્ગ, એ મારે શા કામનું ? ॥

બ્રહ્મસૂત્રના આ આશયને **શાંકરભાષ્ય** સતત અનુસરે છે. શ્રુતિઓ ને સ્મૃતિઓના અર્કને પ્રસ્તુત કરે છે અને ફરી ફરીને આત્માને આત્મજ્ઞાન માટે પ્રોત્સાહિત કરે છે. **य आत्माऽपहतपाप्मा सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः** - તારી બીજી બધી જ શોધોને અભરાઈએ ચડાવી દે, ને એક માત્ર તારા નિષ્પાપ આત્માની શોધમાં લાગી જા. બીજા બધાં જ અભ્યાસ અને ભણતરને ગૌણ કરીને તું

આત્મજિજ્ઞાસા કરી લે અને આત્મજ્ઞાનને મેળવવાના પ્રયત્નમાં લાગી જા. **आत्मेत्येवोपासीत** - શરીર, સંપત્તિ, સત્તા...આ બધા ઉપાસ્ય નથી. ઉપાસ્ય છે માત્ર તારો આત્મા. પરોપકાર, સદાચાર, દાન, દયા આ બધા જ આત્મોપાસનાના સાધનો છે. **आत्मानमेव लोकमुपासीत ।** તારા જીવનનું સાર્થક્ય અને સાફલ્ય એમાં જ છે, કે તું તારા આત્માની ઉપાસના કરી લે, તારા સમય, બુદ્ધિ, શક્તિ, સામગ્રીનો આથી શ્રેષ્ઠ બીજો કોઈ જ ઉપયોગ નથી.

સિંહે તો બધો જ પર્દાફાશ કર્યો છે...હવે આપણે 'બેં બેં' કરવું કે ગર્જના કરવી, એ આપણા હાથની વાત છે. ભ્રમમાં બંધાવું કે મુક્ત થવું, એ આપણને સ્વાધીન વાત છે. નશ્વર - ક્ષણિક-તુચ્છ વિષયોનો ચારો ચરવો કે આત્મરમણતાના અદ્ભુત આનંદના આસામી થવું, એ આપણી રુચિની બાબત છે. 'ઠેકડા' ને 'ઠેસ'ના ભોગ બનવા માટે કે પરમસુખના શિખરે ઉર્ધ્વારોહણ કરવા માટે આપણે સ્વતંત્ર છીએ. સંસાર એક ભરવાડની અદાથી આપણને હાંકે તેમ ઢસડાયા કરવું ? કે આત્મજ્ઞાન અને આત્મહિતાનુષ્ઠાનના માધ્યમે આત્મસામ્રાજ્યના સમ્રાટ થવાનો આપણો જન્મસિદ્ધ અધિકાર મેળવી લેવો ?

સિંહની ગર્જના થઈ ચૂકી. હવે વારો બચ્ચાનો છે.

●●●

વિષવિઘાત

શબ્દ અને વિચારની જાદુઈ અસર

શ્રાદ્ધપ્રતિક્રમણસૂત્ર

છાતી ફાટી જાય એવી ચીસ સાથે એ વૃદ્ધા ઢળી પડી. આગંતુકો સ્તબ્ધ થઈ ગયાં. વાતાવરણ દિઙ્મૂઢ બની ગયું. હાથ-પંખાનો પવન અને શીતળ જળનું સિંચન...થોડી વાર પછી એ વૃદ્ધા ભાનમાં આવી અને એ નિશ્ચેષ્ટ દેહને વળગી પડી, જેને આગંતુકો લઈ આવ્યા હતાં. એ હતો એનો એકનો એક પુત્ર-લીલોછમ છે એનો દેહ...ખ્યાલ આવી ગયો છે વૃદ્ધાને કે વગડામાં એને કોઈ સાપ કરડી ગયો છે. પથ્થર હૃદયને ય પીગળી દે એવો એ કલ્પાંત..બેટા હંસ ! આંખો ખોલ ! આંખો ખોલ બેટા હંસ ! એક વાર આંખો ખોલ...નહીં તો આ તારી માની આંખો મીંચાઈ જશે...

'તમે જરા બાજુમાં આવી જાવ. જુઓ આ વૈદરાજ આવી ગયા છે. હમણા બધું સારું થઈ જશે.' પડોશીના શબ્દે વૃદ્ધા ખસી ગઈ. એની આંખોની આશા જાણે સાત મિનાર ઊંચી થઈ થઈને ચેતનાના આગમનને ઝંખી રહી છે. પણ કા...શ વૈદરાજના નીસાસાએ એ આશાને નિરાશા બનાવી દીધી. વાતાવરણની ગંભીરતા વધતી જાય છે. વૈદરાજ ફળિયાની બહાર નીકળે, એ પહેલા તો ગારુડીઓ પણ આવી ગયા. તમ-તમારે કોઈ ચિંતા ન કરો, આ મંત્ર બોલીએ એટલી જ વાર, હમણા ઝેર ઉતર્યું જ સમજો. આખી પોળ ક્યાંય સુધી મંત્રોચ્ચારોથી ગુંજતી રહી. વૃદ્ધાની આંખોમાં આશાની ચમક ઓસરી રહી છે. પુત્રનો દેહ એવો ને એવો...નિશ્ચેષ્ટ પડ્યો છે. ને ગારુડીઓના અવાજ પણ ધીરા થઈ રહ્યા છે. 'થોડું વહેલું કર્યું હોત તો જાન બચી જાત. જીવ જતો રહ્યો પછી શું થાય ?' ગારુડીઓએ વિદાય લીધી. અંધારું વધી રહ્યું છે. લોકો વીખરાઈ રહ્યા છે. 'સવારે વહેલા કાઢી જઈશું' એવી ગણગણ થઈ રહી છે. પણ વૃદ્ધા...એને હજી ય આશા છે. એટલે જ તો એ જીવી રહી છે.

આખી રાત એનો વહાલ વરસાવતો હાથ પુત્રના માથે ફરતો રહ્યો અને

એના કાનમાં એ બોલતી રહી...બેટા હંસ !...બેટા હંસ ! હંસ બેટા !...ને સવારે...દીકરાએ આંખ ખોલી...એક બાજુ સૂર્યોદય થઈ રહ્યો છે...ને વૃદ્ધાનો આનંદ હિલોળે ચડ્યો છે. ગામ તો ભેગું થયું. ગારુડીઓ પણ દોડતા આવ્યા. જોયું તો શરીરમાં ઝેરનું નામોનિશાન નથી. 'આશ્ચર્ય...માજી ! તમે શું કર્યું હતું ?' 'કશું નહીં. હું તો ફક્ત એને બોલાવતી રહી હતી.' 'અચ્છા....શું નામ છે એનું ?' 'હંસ.'

अये गारुडमन्त्रबीजाक्षरमिदं तेनासौ सज्जो जातः ।

તાળો મળી ગયો...આ જ તો ગારુડમંત્રની બીજાક્ષર છે, એટલે એનાથી ઝેર ઉતરી ગયું.

શબ્દમાં અકલ્પિત શક્તિના ભંડારો પડેલા છે. એક એક અક્ષરની પોતાની આગવી વિશિષ્ટતા અને સામર્થ્ય છે. જેમ કે કડકડતી ઠંડીના સમયે બર્ફીલા પહાડોની વચ્ચે ખુલ્લા મેદાનમાં મધરાતે અમુક ચોક્કસ પદ્ધતિથી 'ર'નું ધ્યાન અને રટણ કરવામાં આવે, તો પરસેવો છૂટી જાય. કારણ કે 'ર' એ અગ્નિબીજ છે. પ્રાચીન શાસ્ત્રોમાં પ્રત્યેક અક્ષરને 'સિદ્ધમાતૃકા' તરીકે કહેવાયા છે. શબ્દશક્તિ પર આજે પણ અનેક પ્રકારના સંશોધનો થઈ રહ્યા છે. અને તેમાં ઓછી-વત્તી સફળતા પણ મળી રહી છે.

પણ આપણા ઋષિ-મુનિઓ માત્ર આટલેથી અટક્યા નથી. શબ્દથી પણ પર છે અશબ્દ, શબ્દના માધ્યમથી અશબ્દમાં જવાનું છે. અશબ્દ એટલે વિચાર.. અધ્યવસાય...ભાવ. જેમાં પ્રગટ ઉચ્ચાર નથી, પણ ભીતરમાં શબ્દમય સંવેદના છે. જેને અંતર્જલ્પ કહેવામાં આવે છે. તંત્રજગતમાં શબ્દ અને અશબ્દની અજબ-ગજબ શક્તિનો દુરુપયોગ પણ કરવામાં આવ્યો છે. પણ આપણા ઋષિ-મુનિઓએ આ શક્તિનો આત્મકલ્યાણ માટે વિનિયોગ કરીને તેનો ઉત્કૃષ્ટ સદુપયોગ કર્યો છે. જેનું શ્રેષ્ઠ ઉદાહરણ છે **શ્રાદ્ધપ્રતિક્રમણ સૂત્ર.**

આજથી લગભગ ૨૫૦૦ વર્ષ પૂર્વે ભગવાન શ્રીમહાવીરસ્વામીના પાંચમા શિષ્ય શ્રીસુધર્માસ્વામીએ આ સૂત્રની રચના કરી હતી. પ્રાકૃતમાં 'ગાથા' છંદમાં રચાયેલ આ સૂત્રમાં ૫૦ ગાથાઓ છે. સદ્ભાગ્યથી આજે...૨૫૦૦ વર્ષ બાદ પણ આ સૂત્ર અખંડપણે એના મૂળ સ્વરૂપે પ્રાપ્ત થાય છે. આ સૂત્રના રહસ્યોને પ્રગટ કરવા માટે એના પર જુદી જુદી બાર જેટલી સંસ્કૃત ટીકાઓ ઉપલબ્ધ છે, તો જુદી

જુદી લોકભાષાઓમાં તેના અનુવાદો અને વિવરણો પણ વિદ્યમાન છે.

એક તાંત્રિક શબ્દશક્તિ અને વિચારશક્તિ દ્વારા કોઈનું કાંઈ બગાડવા કે સુધારવા પ્રાયસ કરે, તેનું ફળ ટૂંકા સમયનું હોઈ શકે છે. કોઈ ચિકિત્સક ધ્વનિચિકિત્સા, સંગીતચિકિત્સા અને રેકી જેવી પદ્ધતિ દ્વારા ધ્વનિશક્તિ અને વિચારશક્તિનો ઉપયોગ કોઈના રોગ મટાડવામાં કરે, તેનું ફળ થોડા લાંબા સમયનું હોઈ શકે છે. આ જ શક્તિઓ દ્વારા ફળ-શાકભાજીઓના ઉત્પાદનમાં ચમત્કારિક પરિણામો મેળવવાના પ્રયોગો થાય છે, તે પણ ઓછા-વત્તા અંશે સફળ થઈ શકે છે. પણ આ બધું જ કિનારે કરેલા છબછબિયા જેવું છે. આપણા પૂર્વમહર્ષિઓ છેક મઝધારે ગયાં છે, એટલું જ નહીં, સાગરના તળ સુધી પહોંચ્યા છે. તેમણે જીવન અને જન્મોજનમનો વિચાર કર્યો છે.

વિજ્ઞાનીઓ રોગની દવા શોધે છે. એ દવાના વધુ સારા વિકલ્પો શોધે છે. એ દવાની આડ-અસરો કેમ ઓછી થાય, એનું સંશોધન કરે છે. અને એક જગજાહેર વાત છે, કે વિજ્ઞાનની પ્રગતિ સાથે સાથે રોગોની વસતિમાં ભયજનક વધારો થતો રહ્યો છે. આની સામે ઋષિ-મુનિઓ કોઈ પણ દુઃખના મૂળ સુધી ગયા છે. રોગ આવ્યો ક્યાંથી ? વિજ્ઞાની કહેશે, સિઝન, પ્રદૂષણ, બેક્ટેરિયા કે વાયરલ ઈફેક્ટથી...ના, આ મૂળ નથી. જે કારણ સાર્વત્રિક હોય, તેનું પરિણામ પણ સાર્વત્રિક હોવું જોઈએ. બધા એ જ સિઝનમાં રહ્યા છે, તો બધાને રોગ કેમ ન થયો ? એક દેશ - એક જ શહેર - એક જ ઘરમાં રહેતા એક જ માતા-પિતાના પુત્રો ને એ પણ જોડિયાં ભાઈઓ...એક સરખા વાતાવરણમાં એક સરખા ખોરાક-પાણીનો ઉપયોગ કરી રહ્યા છે. તેમાંથી એકને જ કેન્સર કેમ થયું ? વિજ્ઞાન હજી પણ માથું ખંજવાળી રહ્યું છે. અને ઋષિ-મુનિઓ પાસે એનો જવાબ અનાદિસિદ્ધરૂપે વિદ્યમાન છે -

दुःखं पापात् ।

દુનિયાનું કોઈ પણ દુઃખ પાપથી આવે છે. સર્વ દુઃખનું મૂળ છે પાપ. અંતર્ગત પાપ જ બાહ્ય નિમિત્તોના માધ્યમે જીવને દુઃખી કરે છે. બાહ્ય નિમિત્ત અકસ્માત્ હોઈ શકે, હત્યા હોઈ શકે, રોગજનક વાતાવરણ, કીટાણુ વગેરે હોઈ શકે, વેપારમાં નુકશાની હોઈ શકે, પણ આ બધું મૂળ નથી, માધ્યમ છે. જ્યાં સુધી મૂળ દૂર નહીં થાય, ત્યાં સુધી દુઃખોનો અંત નહીં આવે. દુઃખોનો અંત કરવાનો ઉપાય આ જ છે કે જીવ નવા પાપો કરવાનું છોડી દે અને આ જન્મમાં ને પૂર્વજન્મમાં કરેલા પાપોનો વિનાશ કરે.

શ્રાદ્ધપ્રતિક્રમણસૂત્ર શબ્દશક્તિ અને વિચારશક્તિ દ્વારા પૂર્વકૃત પાપોનો વિનાશ કરવા માટે એક અદ્ભુત આલંબન છે. શ્રાદ્ધનો અર્થ છે એ વ્યક્તિ, જેને જીવ, અજીવ, પુણ્ય, પાપ વગેરે તત્ત્વો પર દૃઢ શ્રદ્ધા છે...પૂર્ણ વિશ્વાસ છે. આધુનિક વિજ્ઞાનીઓ પણ જ્યારે પૂર્વજન્મ અને પુનર્જન્મ પર શ્રદ્ધા ધરાવી રહ્યા છે, ત્યારે બુદ્ધિજીવીઓ માટે પણ 'શ્રાદ્ધ' બનવું કઠિન નથી. 'પ્રતિક્રમણ'નો અર્થ છે પાછા ફરવું.

स्वस्थानाद्यत् परस्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः ।

भूयोऽप्यागमनं तत्र, प्रतिक्रमणमुच्यते ॥

નિષ્પાપવૃત્તિ એ જીવનું પોતાનું સ્થાન છે. તે સ્થાનને છોડીને વિષયતૃષ્ણા વગેરેને કારણે જીવ પાપપ્રવૃત્તિ કરે, અને પરસ્થાનમાં જાય છે. આ પરસ્થાનથી જીવ સ્વસ્થાનમાં પાછો આવે, એનું નામ પ્રતિક્રમણ.

પાપોનો વિનાશ કરવા માટે ચાર સોપાન (સ્ટેપ્સ) છે. (૧) પાપોનો તીવ્ર પશ્ચાત્તાપ (૨) સદ્ગુરુ સમક્ષ પાપોની કબૂલાત (૩) પાપોની નિંદા (૪) પ્રાયશ્ચિત્તનો સ્વીકાર. અધ્યાત્મવિશ્વનો આ શાશ્વત સિદ્ધાન્ત છે કે દોષ અને ગુણ આ બંનેમાંથી તમે જેને ધિક્કારશો, એ તમારામાંથી દૂર થશે, અને જેને ચાહશો, એ તમને મળશે. પાપ એ આત્મગત દોષનો વિકાર છે. **શ્રાદ્ધપ્રતિક્રમણસૂત્ર** પાપનું ઉન્મૂલન કરે છે, ને માટે જ દુઃખોનું ઉન્મૂલન કરે છે.

कयपावो वि मणुस्सो, आलोईयनिंदिओ गुरुसगासे ।

होइ अइरेगलहुओ, ओहरियभरु व्व भारवहो ॥

પાપી મનુષ્ય પણ ગુરુ પાસે પાપોની કબૂલાત અને પાપોની નિંદા કરીને અત્યંત હળવો થઈ જાય છે, જાણે કોઈ ભારવાહકે પોતાના માથા પરનો બોજો ઉતારી દીધો હોય. **શ્રાદ્ધપ્રતિક્રમણસૂત્ર**માં ક્રમશઃ હિંસા, અસત્ય, ચોરી વગેરે પાપોનો ઉલ્લેખ આવતો જાય છે, અને पडिक्कमे...निंदे...तं निंदे तं च गरिहामि...જેવા શબ્દો દ્વારા એ પાપોથી 'પ્રતિક્રમણ' કરવામાં આવે છે. પાપો પ્રત્યેનો પક્ષપાત ફરી ફરી પાપપ્રવૃત્તિ કરાવે છે અને જીવ દુઃખોના વિષચક્રમાંથી મુક્ત થઈ શકતો નથી. 'પ્રતિક્રમણ' અને 'નિંદા' આ પક્ષપાતને તોડી નાખે છે. પક્ષપાત તૂટી જવાથી જીવને પાપમાં રસ રહેતો નથી. કદાચ સંયોગવશ એને કોઈ પાપ કરવું પડે, તો ય એનું દિલ ડંખે છે, અને એ પાપ ખટકે છે, એ ઓછામાં ઓછું પાપ કરવા પ્રયત્ન કરે છે,

એ પાપને એ ખૂબ ધિક્કારે છે. પરિણામે એ પાપ એને વિશિષ્ટ ફળ આપી શકતું નથી. જેને પાપમાં મજા નહીં, એને પાપની સજા નહીં.

જેને પાપમાં મજા નહીં,
એને પાપની સજા નહીં.

શરત એટલી જ...પાપ પ્રત્યે તેનો ધિક્કારભાવ હાર્દિક હોવો જોઈએ. જે સ્વરસથી પાપ કરે, તેની પાપનિંદા પણ દંભ બની જાય છે...निन्दामि च पिबामि च...આ ઘાટ ઘડાય છે.

જે 'શ્રાદ્ધ' છે, તેનું અંતર આ સૂત્ર બોલતા બોલતા ગદ્ગદ્ થઈ જાય છે, અને આંખોમાંથી અશ્રુધારા વહેવા લાગે છે. આ છે શબ્દશક્તિ અને વિચારશક્તિનો સુભગ સમાગમ, જે આત્મગત પાપોને ભસ્મીભૂત કરી દે છે. શક્ય છે છ મહિનાની અંદર જે પાપ કેન્સરની ત્રણ ગાંઠો લાવવાનું હોય, એ પાપ આ સુભગ સમાગમમાં....પશ્ચાત્તાપની ગંગામાં ધોવાઈને સાફ થઈ જાય...અકસ્માત્ આદિની શક્યતાઓ નાબૂદ થઈ જાય. અરે, આ તો ભવિષ્યનું ફળ છે...હળવાશ, પ્રસન્નતા, 'સ્વસ્થાન'ની શાંતિ જેવા અનેક ફળો તો તાત્કાલિક મળે છે. **હા પસ્તાવો વિપુલ ઝરણું સ્વર્ગથી ઉતર્યું છે, પાપી તેમાં ડુબકી દઈને પુણ્યશાળી બને છે.**

શ્રાદ્ધપ્રતિક્રમણસૂત્રની પૂર્વભૂમિકા અને પાશ્ચાત્યક્રિયા બંને મળીને કુલ એક કલાકનું આ પાવન અનુષ્ઠાન હોય છે. આજે પણ સેંકડો હજારો શ્રાદ્ધજનો સવારે અને સાંજે આ અનુષ્ઠાનનું આચરણ કરે છે. પર્વના દિવસોમાં આ સંખ્યા લાખોને આંબે છે.

અધ્યાત્મ વિશ્વનો આ શાશ્વત સિદ્ધાન્ત છે - ગુણ અને દોષ - આ બંનેમાંથી જેને ધિક્કારશો, એ દૂર થશે, જેને ચાહશો એ મળશે.

પાપવિનાશનો આ રાજમાર્ગ જ વ્યક્તિગત અને સમષ્ટિગત સુખનું કારણ છે. પાપ માત્ર આધ્યાત્મિક દષ્ટિએ જ નહીં, પણ સામાજિક અને રાજકીય દષ્ટિએ પણ ઈચ્છનીય નથી. માટે જ સામાજિક અને રાજકીય કાયદાઓ પૂર્વકાળથી જ પાપો ન થાય એવી જોગવાઈ કરતાં આવ્યા છે. પણ વિચારણીય મુદ્દો એ છે, કે એ કાયદાઓ પાપનિવારણમાં કેટલા સફળ થઈ શક્યા છે ? જાતીય સતામણી માટે મૃત્યુદંડ સુધીની જોગવાઈ થવા છતાં એ પાપમાં કોઈ ઘટાડો કેમ થતો

નથી ? દિન-પ્રતિદિન ભ્રષ્ટાચાર ને ચોરીઓ વધતી કેમ જાય છે ? ધારો કે એક દિવસ એવો ઠેરવવામાં આવે, કે એ દિવસે કરેલા કોઈ પણ અપરાધ માટે કોઈ પણ દંડ નહીં, તો એ દિવસે શું થાય ? (સોરી, શું ન થાય ?) આત્મસાક્ષિક સ્વૈચ્છિક સજ્જનતાનું સમાજમાં સ્થાન કેટલું ? ગમે તેટલા પ્રલોભનો અને સ્વતંત્રતા હોવા છતાં વ્યક્તિને પાપ કરવાનો વિચાર સુદ્ધા ન આવે એ શી રીતે શક્ય બને ? જવાબ આ જ છે— પ્રતિક્રમણ. દુનિયાભરના કાયદાશાસ્ત્રીઓ અને દંડવ્યવસ્થા એક બાજુ છે, અને બીજી બાજુ મહર્ષિઓએ દેખાડેલો આ પાવન માર્ગ છે.

राजदण्डभयात् पापं, नाचरत्यधमः पुनः ।

परलोकभयान् मध्यः, स्वभावादेव चोत्तमः ॥

અધમ વ્યક્તિ વિચારે છે, કે 'જો હું પાપ કરીશ, તો મને રાજા (સરકારી અધિકારી, પોલિસ વગેરે) દંડ આપશે.' ને આ વિચારથી એ પાપની અટકે છે. મધ્ય વ્યક્તિ વિચારે છે, કે પાપ કરીશ, તો પરલોકમાં મારે દુઃખી થવું પડશે. માટે એ પાપ નથી કરતી. અને ઉત્તમ વ્યક્તિ દંડના / દુઃખના ભયથી નહીં, પણ સ્વભાવથી જ પાપ નથી કરતી. ધારાસભા અને ન્યાયતંત્ર જો સમાજને અપરાધમુક્ત કરવા માંગતા હોય, તો તેમણે સમાજ અધમદશામાંથી મધ્યમદશા અને ઉત્તમદશા પામે એવા પ્રયત્ન કરવા જોઈએ. સજ્જનતા, પાપત્યાગ, સંસ્કાર અને સંસ્કૃતિના મૂળભૂત સિદ્ધાન્તો જે આપણા પ્રાચીન શાસ્ત્રોમાં રહેલા છે, તેનું શિક્ષણ નર્સરીથી માંડીને કોલેજ સુધી ગોઠવી દેવું જોઈએ. વર્તમાન શિક્ષણ પદ્ધતિમાં આ અત્યંત ઉપયોગી જ્ઞાનની અવગણના દેખાઈ રહી છે. આ સ્થિતિમાં ભલે ગમે તેટલા ઉચ્ચ દંડની જોગવાઈ કરવામાં આવે, અપરાધો ઓછા થાય એવી કોઈ જ શક્યતા નથી. એક ડૉક્ટર જો કિડનીની ચોરી કરે છે ને એક વકીલ જો પોતે મેળવેલા શિક્ષણનો ભયાનક દુરુપયોગ કરે છે, તો એ કલંક માત્ર એ ડૉક્ટર કે વકીલનું નથી, સમગ્ર શિક્ષણવ્યવસ્થાનું છે. વાવેતર જ જો વિષવૃક્ષનું કર્યું છે, તો અમૃતફળની આશા શી રીતે રાખી શકાય ?

પ્રતિક્રમણવિજ્ઞાન એ સુધાવૃક્ષનું વાવેતર છે, જે સર્વ વિષવિકારોને દૂર કરીને પરમ સુખ આપે છે. **શ્રીસુધર્માસ્વામી**ના શબ્દો મનનીય છે -

जहा विसं कुट्ठगयं, मंतमूलविसारया ।

विज्जा हणंति मंतेहिं, तो तं हवइ निव्विसं ॥

एवं अट्ठविहं कम्मं, रागदोससमज्जियं ।
आलोअंतो य निंदंतो, खिप्पं हणइ सुसावओ ॥

આત્મઘાતક આતંકવાદી જેવી આપણી દયનીય સ્થિતિ છે. વિસ્ફોટ નથી થયો, ત્યાં સુધી બાજી આપણા હાથમાં છે.

ગારુડમંત્રથી જેમ શરીરનું વિષ નાશ પામે છે, તેમ પ્રતિક્રમણથી આત્માનું વિષ (પાપો) નાશ પામે છે. આત્માનું વિષ જ બાહ્ય બધાં જ વિષોને (દુઃખોને) ખેંચી લાવે છે. આ અંતર્ગત વિષ એ ટાઈમબોંબ જેવું છે. આત્મઘાતક આતંકવાદી જેવી આપણી દયનીય સ્થિતિ છે. વિસ્ફોટ નથી થયો, ત્યાં સુધી આપણી બાજી આપણા હાથમાં છે. પાપોના સંયોગ (કનેક્શન) દૂર કરી દઈએ, તો રાજ, ને નહીં તો તારાજ. પસંદ આપણી.

●●●

સુધાનું સર્વસ્વ

અમૃતબિંદૂપનિષદ્

પર્વતીય પ્રદેશ...ખળખળ વહેતા ઝરણા....કલરવ કરતાં પંખીઓ...રમણીય પરિસર અને પ્રભાતનો સમય...એક વૃક્ષની નીચે એક સંત ધ્યાનમગ્ન છે. મુખ પર પ્રશાન્તતા પણ છલકી રહી છે અને પ્રસન્નતા પણ. બહારની રમણીયતાને ક્યાંય શરમાવે, એવી પરમ રમણીય આંતરસૃષ્ટિમાં વિચરી રહ્યા છે એ સંત, બહારના ઝરણાઓને ઝંખા પાડી રહ્યા છે એમના અંતરમાંથી ફૂટી નીકળતા સ્વયંભૂ સુખના ઝરણા, કશું જ નથી એમની પાસે, ને છતાં ય દુનિયાના બેતાજ બાદશાહ છે એ. **ઉપનિષદો**એ અમસ્તુ નથી કહ્યું.

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः ।

ભોગનો એક માત્ર ઉપાય છે ત્યાગ. ભોગી મૃગતૃષ્ણાના મૃગની જેમ જીવનભર ભટકતો જ રહે છે, અને ભીતરના સુખથી વંચિત રહે છે. ત્યાગી સમજે છે, કે એ જળ નથી, ઝાંઝવા છે. ત્યાગી ભીતરી સ્રોત તરફ વળે છે અને એ સુધારસમાં નિમગ્ન બનીને પરમ તૃપ્તિનો અનુભવ કરે છે. તૃપ્તિનું એકછત્રી સામ્રાજ્ય સંતની અસ્મિતા બન્યું છે, એ સમયે કોઈ જિજ્ઞાસુ ત્યાં આવી ચઢે છે. એ ચરણસ્પર્શ કરે છે અને સંત આંખો ખોલે છે. તેજ અને કૃપાના ધોધથી જિજ્ઞાસુ આપ્લાવિત થઈ જાય છે...**यस्य दृष्टिः कृपावृष्टिः....**

ભોગનો એકમાત્ર ઉપાય છે ત્યાગ

થોડી ક્ષણો એમ જ વીતી જાય છે અને હવે જિજ્ઞાસુ પ્રશ્ન કરે છે. “ભગવંત ! બંધનનું કારણ શું છે ?” સંતે જવાબ આપ્યો, “મન.” જિજ્ઞાસુ વિસ્મિત થયો. એણે બીજો પ્રશ્ન કર્યો, “મુક્તિનું કારણ શું છે ?” સંતે કહ્યું. “મન.” જિજ્ઞાસુનો વિસ્મય અનેકગણો બન્યો. એણે ખુલાસો કરવા વિનંતિ કરી, અને સંતના હોઠ ફરક્યા.

मन एव मनुष्याणां, कारणं बन्धमोक्षयोः ।

बन्धाय विषयाऽऽसक्तं, मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ॥

મનુષ્યના બંધન અને મોક્ષનું કારણ મન જ છે. વિષયોમાં આસક્ત મન બંધનનું કારણ બને છે અને વિષયોથી વિરક્ત મન મોક્ષનું કારણ બને છે. સૃષ્ટિનું આ પરમ રહસ્ય છે, જેને **અમૃતબિંદૂપનિષદ્**માં પીરસવામાં આવ્યું છે. આ ઉપનિષદ્નું બીજું નામ **બ્રહ્મબિંદૂપનિષદ્** પણ છે. **કૃષ્ણ યજુર્વેદ**થી સંબંધિત આ ઉપનિષદ્ની રચના અજ્ઞાત પૂર્વ મહર્ષિએ કરી છે. પ્રાસાદિક સંસ્કૃતમાં 'અનુષ્ટુપ્' છંદમાં ૨૫ શ્લોક પ્રમાણ આ ગ્રંથમાં પ્રકૃતિના ગૂઢ રહસ્યોને વણી લેવામાં આવ્યા છે.

ભાવવિશ્વમાં જો રાગ-દ્વેષના તોફાનો છે, તો બાહ્યવિશ્વમાં શાંતિ સંભવિત જ નથી.

મન એક ભાવવિશ્વ છે. બાહ્યવિશ્વની પ્રત્યેક ઘટનાનો સંબંધ આ ભાવવિશ્વ સાથે હોય છે. ભાવવિશ્વમાં જો રાગ-દ્વેષના તોફાન છે, તો બાહ્યવિશ્વમાં શાંતિ સંભવિત જ નથી. અને જ્યાં શાંતિ નથી, ત્યાં બંધન છે. અધ્યાત્મદૃષ્ટિ ઘણી સૂક્ષ્મ છે. એક વસ્તુની ચોરી કરવી એ જેમ પાપ છે, તેમ અધ્યાત્મદૃષ્ટિએ એક વસ્તુ ગમી જવી એ પણ પાપ છે. કારણ કે ચોરીના મૂળમાં પણ 'ગમવા'ની વૃત્તિ હોય છે. ચોર 'બંધન' પામે છે, તેના મૂળમાં તેના ભાવવિશ્વના રાગ-દ્વેષના તોફાન હોય છે. ને આ તોફાનનો આધાર તેનું મન છે...**बन्धाय विषयासक्तम्**...વિષયાસક્ત મન એટલે બંધનનું નિમંત્રણ, ચોરી પણ સૂક્ષ્મ હોઈ શકે છે. અને બંધન પણ સૂક્ષ્મ હોઈ શકે છે. જે વસ્તુ ગમી, એના આપણે ગુલામ થયાં. એ પાસે છે તો આપણે ખુશ, એ પાસે નથી તો આપણે નાખુશ. આપણી લગામ ને આપણું રિમોટ એના હાથમાં. કોઈ એને લઈ ન લે એનો ભય છે. એ તૂટી-ફૂટી ન જાય એનો ગભરાટ છે. એ જતી ન રહે એની ચિંતા છે...**प्राप्तिः सुखस्य दयिते न कथञ्चिदस्ति ।** આ બંધન નહીં, તો બીજું શું છે ? આપણે કબૂલીએ કે ન કબૂલીએ...ગમા-અણગમાની સાથે સાથે ભય, ગભરાટ, ચિંતા, તૃષ્ણા વગેરેની વણઝાર અવશ્ય હોય છે. વસ્તુની વિદાયમાં જે શોકનો વિસ્ફોટ થાય છે, એ જ આ વાતને પુરવાર કરે છે. અજ્ઞાનીને જે વસ્તુ કે વ્યક્તિ પાસે એના સુખની આશા છે, એ જ એને વાસ્તવમાં દુઃખ આપતી હોય છે.

આપણને જે ગમે છે, એના આપણે ગુલામ છીએ.

सम्बन्धानात्मनो जन्तुर्यावतः कुरुते प्रियान् ।

तावन्तस्तस्य जायन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥

જીવ જેટલા જેટલા પ્રિયસંબંધો કરે છે, તેટલા તેટલા શોકના શલ્યો એના હૃદયને વીંધે છે. મોક્ષના પરમ સુખનો આ જ માર્ગ છે, કે મન વિષયોથી વિરક્ત બની જાય. જનક રાજાએ અષ્ટાવક્ર મુનિને મોક્ષમાર્ગ બતાવવા વિનંતિ કરી. ત્યારે તેમણે આ જ માર્ગદર્શન આપ્યું હતું. જે આજે પણ **અષ્ટાવક્ર મહાગીતા**માં કંડારાયેલું છે.

વાસ્તવમાં એ જ દુઃખ આપે છે, જેની પાસે સુખની આશા છે.

मुक्तिमिच्छसि चेत् तात ! विषयान् विषवत्त्यज ।

જો મુક્તિ જોઈતી હોય, તો વિષયોને વિષ સમજી લે અને તેમનો ત્યાગ કર. સુંવાળા સ્પર્શો, ભાવતા ભોજનો, માદક સુગંધ, મોહક રૂપ, અને લોભામણા ગીત-સંગીત - આ બધાં વિષયો છે. અજ્ઞાનીને એ અમૃત લાગે છે, જ્ઞાનીની દૃષ્ટિમાં એ હળાહળ ઝેર છે. સંસારના તમામ પાપો અને અપરાધોના મૂળમાં આ વિષયોની આસક્તિ છે અને સમસ્ત દુઃખોનું મૂળ પણ આ જ છે. **આગમ**માં કહ્યું છે.

जे गुणे से आवट्टे

વિષયો જ દુઃખમય સંસારનો પર્યાય છે. 'જળ'ને એટલા માટે જ 'જીવન' કહેવાય છે, કે જળ વિના જીવન સંભવિત નથી. વિષયોને એટલા માટે જ દુઃખમય સંસાર છે. **અનુભૂતિગીતા**ના શબ્દો યાદ આવે છે.

મુક્તિ મુક્તિ શું કરો ? કરો વિષય પરિહાર ।
વિષયમુક્તિ મુક્તિ છે, વિષય છે સંસાર ॥

અજ્ઞાનીને જે અમૃત લાગે છે, એ જ્ઞાનીની દૃષ્ટિમાં હળાહળ ઝેર છે.

મોક્ષ 'મુક્તિ મુક્તિ'નું રટણ કરવાથી નથી મળતો. વિષયત્યાગ કરવાથી મળે છે. તું તારા આત્માને વિષયોથી મુક્ત કરી દે, એ જ તારી મુક્તિ છે, કારણ કે સંસાર એ બીજું કશું જ નથી, સિવાય વિષયો.

અમૃતબિંદુ વધુ ને વધુ સ્પષ્ટ થઈ રહ્યું છે. **बन्धाय विषयासक्तम्...**

રાવણનું પતન થયું, ઘોર પરાજય થયો, કરુણ મૃત્યુ થયું, અને ભયાનક દુર્ગતિ થઈ, એનું કારણ વિષયાસક્તિ સિવાય બીજું શું હતું ? રાવણની વિષયાસક્તિએ જ અનર્થોની પરંપરાનું સર્જન કર્યું હતું. **ભગવદ્ગીતા**માં આ પરંપરાનું ક્રમબદ્ધ વર્ણન કરેલ છે -

ध्यायतो विषयान् पुंसः, सङ्गस्तेषूपजायते ।

सङ्गात् सञ्जायते कामः, कामात् क्रोधोऽभिजायते ॥

વિશ્વમાં પ્રત્યેક આત્માની પોતાની રામાયણ હોય છે.
જેમાં રાવણ થવું કે રામ એ એના હાથની વાત છે.

क्रोधाद् भवति सम्मोहः, सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥

જીવ વિષયોનો વિચાર કરે છે, તેનાથી તેને 'વિષયાસક્તિ' થાય છે. વિષયાસક્તિથી 'કામ' જન્મે છે, અને 'કામ'થી 'ક્રોધ'નો ઉદ્ભવ થાય છે. 'ક્રોધ'થી 'સંમોહ' થાય છે. 'સંમોહ'થી 'સ્મૃતિભ્રંશ' થાય છે. 'સ્મૃતિભ્રંશ'થી 'બુદ્ધિનાશ' થાય છે અને 'બુદ્ધિનાશ'થી જીવ 'વિનાશ' પામે છે.

'સીતાજી'ના વિચારોથી રાવણને તેમનામાં આસક્તિ થઈ અને કામવાસનાથી એ નખશિખ સળગી ઉઠ્યો. પછી જે એ કામપૂર્તિમાં વિઘ્ન લાગ્યા, એમના પર એનો ક્રોધ ભભૂકી ઉઠ્યો. એ ક્રોધે જ એને સંમોહનો શિકાર બનાવ્યો - મારું હિત શેમાં છે અને અહિત શેમાં છે, એનું એને ભાન ન રહ્યું. ને આ સંમોહના કારણે એણે જે તત્ત્વજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું હતું, એને તો એ ભૂલી જ ગયો, પોતાના કુળની મર્યાદાને પણ ભૂલી ગયો. આનું નામ સ્મૃતિભ્રંશ. જેના પરિણામે એની બુદ્ધિ ભ્રષ્ટ થઈ ગઈ. **विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ।** હનુમાનજી અને અંગદજીએ તો એને સમજાવ્યો, બિભીષણજીએ પણ કાંઈ કહેવામાં બાકી રાખ્યું નહીં, તો ય એ ન સમજ્યો, તે ન જ સમજ્યો. પહેલું પગથિયું એ ચૂક્યો હતો. હવે વચ્ચે ક્યાંય અટકવું એના માટે શક્ય ન હતું. વિનાશ થઈને રહ્યો.

સ્થૂલદૃષ્ટિએ રાવણનો પરાજય શ્રીરામે કર્યો હતો. પણ સૂક્ષ્મદૃષ્ટિએ રાવણનો પરાજય સીતાજીએ કર્યો હતો. ને દૃષ્ટિને હજી સૂક્ષ્મ બનાવીએ તો પ્રતીત થાય છે, કે રાવણનો પરાજય રાવણે જ કર્યો હતો. કારણ કે રાવણ ખુદ એના વિષયાસક્ત મનને આધીન થયો હતો અને એણે જ વિનાશને નિમંત્રણ આપ્યું હતું.

ઉપનિષદ્નું તત્ત્વજ્ઞાન કહે છે, કે વિશ્વમાં પ્રત્યેક આત્માની પોતાની રામાયણ હોય છે. જેમાં રાવણ થવું કે રામ એ એના હાથની વાત છે. વિષયોને આધીન થાય તો એ પોતે જ રાવણ અને વિષયોની ગુલામીથી મુક્ત થાય તો એ સ્વયં શ્રીરામ. રાવણ બંધન પામે છે ને શ્રીરામ મુક્તિ... **बन्धाय विषयसक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम् ।**

સંતની આંખો બંધ થઈ છે અને જિજ્ઞાસુની આંખો ખુલી ગઈ છે. સંત ફરી ધ્યાનમાં મગ્ન બન્યા છે અને જિજ્ઞાસુની આંખો એમના ચરણ પર અભિષેક કરી રહી છે. એ અશ્રુઓમાં હર્ષ પણ છે. કૃતાર્થતા પણ અને કૃતજ્ઞતા પણ. કારણ કે સંતે એને જે આપ્યું છે, એ સુધાનું સર્વસ્વ પણ છે અને અમરતાનું વરદાન પણ.

●●●

અધ્યાત્મનું અમૃત

અધ્યાત્મોપનિષદ્

અંગે અંગથી લાવણ્ય નીતરી રહ્યું છે...સૌન્દર્ય ટપકી રહ્યું છે...માદકતાએ માઝા મૂકી છે...મોહકતા મન મૂકીને વરસી છે...અદાઓ અવર્ણનીય બની છે...ને નૃત્ય ચરમસીમાએ પહોંચ્યું છે. પથ્થરને ય પીગાળી દે એવા વાતાવરણનું સર્જન થયું છે. નામ જ છે રૂપકોશા...રૂપનો મૂર્તિમંત કોશ.

પણ રે ! મુનિ સ્થૂલભદ્રની આંખ પણ ઊંચી થતી નથી ને રુંવાડું પણ ફરકતું નથી. જાણે કશું છે જ નહીં, એવો ઉપેક્ષાભાવ. જાણે પોતે ત્યાં હાજર જ નથી, એવો અંતર્મુખભાવ. અને ખરેખર, આત્મગુણોની અનંત સમૃદ્ધિની તુલનામાં બહાર હતું પણ શું ? બાહ્ય લાવણ્યના આવરણમાં મળ-મૂત્રની ગંદકી...નૃત્યના નામે વ્યર્થ ઉછળ-કૂદ...સંગીતના બહાને નર્યો ઘોંઘાટ, ના, બહાર કશું જ ન હતું. ને, એ પોતે ય ત્યાં નથી જ. એ તો મગ્ન છે ભીતરના પરમાનંદના અમૃતકુંડમાં.

જેના જીવનમાં શાસ્ત્રે કહેલું તત્ત્વ જીવંત બન્યું હોય, એનું નામ સંત. શાસ્ત્ર છે **અધ્યાત્મોપનિષદ્** અને તત્ત્વ છે વિરાગ.

वासनानुदयो भोग्ये, वैराग्यस्य तदावधिः ।
अहंभावोदयाभावो, बोधस्य परमावधिः ॥
लीनवृत्तेरनुत्पत्ति - र्मर्यादोपरतेस्तु सा ।
स्थितप्रज्ञो यतिरयं, यः सदानन्दमश्नुते ॥

ભોગ્યની હાજરીમાં પણ વાસના ન જાગે, એ વિરાગની પારકાષ્ઠા છે. અહંકારની શક્યતા જ નાબૂદ થઈ જાય, એ જ્ઞાનની ચરમ સીમા છે. રાગ-દ્વેષની વૃત્તિઓ એવું મરણ પામે, કે જેના પછી જન્મ જ નથી, એ વિરતિની પરાકાષ્ઠા છે. આવો વિરાગ, જ્ઞાન અને વિરતિનો ત્રિવેણી સંગમ જેમને સ્વાધીન છે એ સંત 'સ્થિતપ્રજ્ઞ' છે. એ સંત સદા આનંદમાં મગ્ન રહે છે.

જેના જીવનમાં શાસ્ત્રે કહેલું તત્ત્વ જીવંત બન્યું હોય, એનું નામ સંત.

અધ્યાત્મોપનિષદ્ એ **શુક્લ યજુર્વેદ**થી સંબંધિત ગ્રંથ છે, જેની રચના અજ્ઞાત પૂર્વ મહર્ષિએ કરી છે. સંસ્કૃતભાષામાં 'અનુષ્ટુપ્' છંદમાં રચાયેલા આ ગ્રંથમાં ૮૧ શ્લોકો છે. પૂર્વ મહર્ષિએ આ ગ્રંથમાં અધ્યાત્મનું અનુપમ અમૃત પીરસ્યું છે... **वासनानुदयो भोग्ये...**

ગેરહાજર ભોગ્યની પણ તૃષ્ણા એ રાગીનું લક્ષણ છે. હાજર ભોગ્યની પણ ઉપેક્ષા એ વિરાગીનું લક્ષણ છે. મનુષ્યમાંથી 'રાગ'ની બાદબાકી થાય, તો ભગવાન બાકી રહે છે. માટે જ વિરાગીને ભગવાનતુલ્ય કહેવામાં આવ્યા છે.

નિરખીને નવયૌવના, લેશ ન વિષયનિદાન ।
ગણે કાષ્ઠની પૂતળી, તે ભગવાન સમાન ॥

રાગી માત્ર ઉપલી સપાટીને જુએ છે. વિરાગી આરપાર જુએ છે. રાગી માત્ર વર્તમાનને જુએ છે. વિરાગી ત્રિકાળ જુએ છે. રાગીનું દર્શન અપૂર્ણ છે, વિરાગીનું દર્શન પૂર્ણ છે. રાગીને રૂપવતી યુવતી પર રાગ છે અને કુરૂપ વૃદ્ધા પર દ્વેષ છે. વિરાગીને બંને પ્રત્યે સમભાવ છે. વિરાગી સમજે છે કે એ બેમાંથી એક ઉપર પણ રાગ કરવા જેવો નથી, કારણ કે બંનેના દેહ અશુચિ છે. ને એ બંનેમાંથી એક્કે પર દ્વેષ કરવા જેવો નથી, કારણ કે બંનેના આત્મા પરમ પવિત્ર છે....**वैराग्यस्य तदावधिः ।**

એક શ્રીમંતના નબીરાએ ખૂબ જ રૂપવતી કન્યા સાથે લવ-મેરેજ કર્યાં. ઘરની બહાર જાય, તો ય એની પત્નીના જ વિચારો કર્યા કરે...જ્યાં જુએ ત્યાં એ જ દેખાયા કરે. એ પાસે ન હોય ત્યારે એની ચિંતા સતાવ્યા કરે. ઘરે આઠ-દશ ફોન ન કરે ત્યાં સુધી ચેન ન પડે. ઘરે પાછો આવે ત્યારે પત્નીનો મોબાઈલ ચેક કરી લે. લગ્નને હજી એક વર્ષ થયું હતું, ને એવામાં એની પત્નીનો કાર-એકસીડેન્ટ થયો, સમાચાર મળ્યા ને યુવકના માથે જાણે વીજળી પડી. આઈ.સી.યુ.ની બહાર રડી રડીને એની આંખો સૂઝી ગઈ. બૂટના અવાજે એણે ઊંચું જોયું. ડૉક્ટરને જોતાની સાથે એ ડૉક્ટરના પગમાં પડી ગયો...“પ્લીઝ, સેવ માય વાઈફ...ડૉ. સાહેબ ! જે લેવું હોય લઈ લેજો....પણ હું એના વગર જીવી નહીં શકું...પ્લીઝ” ડૉક્ટરે આશ્વાસન આપ્યું. ટ્રીટમેન્ટ ચાલી. જીવ બચી ગયો. છ દિવસ પછી ચહેરા પરનો પાટો ખુલ્યો ને યુવાનના પગ તળેથી ધરતી સરકી ગઈ. કાંચની કરચોએ પત્નીના ચહેરાને બેહદ કદરૂપો લગાવી દીધો હતો. યુવાન સીધો બહાર નીકળી ગયો.

ડૉક્ટરની કેબિનમાં જઈને કહી દીધું "જે લેવું હોય, એ લઈ લેજો. એને ઝેરનું ઈંજેકશન આપીને પતાવી દો."

રાગી માત્ર ઉપલી સપાટીને જુએ છે. વિરાગી આરપાર જુએ છે.

'લવ' કરનાર પણ રાગ છે. ચિંતા અને શંકા કરનાર પણ રાગ છે. હસનાર અને રડનાર પણ રાગ છે. પતાવી નાખનાર પણ રાગ છે અને બીજાં રૂપની શોધ કરનાર પણ રાગ છે. પરમ સત્ય એ છે કે જ્યાં રાગ છે, ત્યાં સુખની કોઈ જ શક્યતા નથી. **अध्यात्मोपनिषद्**ના તત્ત્વનો હવે સાક્ષાત્કાર થાય છે...**वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य तदावधिः** જે અંદરથી પૂર્ણ છે, એને બહાર બધું જ શૂન્ય દેખાય છે. અને શૂન્ય પ્રત્યે કોઈ વાસના જાગવી શક્ય જ નથી. યુવાન પાસે આ આંતરિક પૂર્ણતા ન હતી, માટે જ એ દુઃખી દુઃખી થઈ ગયો. અજ્ઞાનીની દૃષ્ટિમાં એ ત્યારે જ દુઃખી હતો, જ્યારે રડી રડીને એની આંખો સૂઝી ગઈ હતી. જ્ઞાનીની દૃષ્ટિમાં એ ત્યારે પણ દુઃખી હતો, જ્યારે એ એની પત્ની સાથે વિલાસ કરતો હતો. રાગ = દુઃખ, વિરાગ =સુખ. ટંકશાળી છે **अध्यात्मोपनिषद्**નું વચન...**यः सदानन्दमश्नुते ।**

જે અંદરથી પૂર્ણ છે, એને બહાર બધું જ શૂન્ય દેખાય છે.

અંદરનો ખાલીપો જ બહાર દોડાવે છે અને જે અંદરથી ખાલી છે, એને દુનિયાની કોઈ વસ્તુ ભરી શકે તેમ નથી. કાગડો પોતે કાળો છે, તો ચૂનાના ગમે તેટલા થર પણ એને ધોળો નહીં કરી શકે. હા, એનાથી કાગડાને એવો આભાસ થઈ શકે, કે હું ધોળો થઈ ગયો. પણ આભાસ એ આભાસ જ છે, અને વાસ્તવિકતા એ વાસ્તવિકતા છે. ક્યાંક વાંચી હતી આ પંક્તિઓ -

અમારી જિંદગીનો આ સરળ સીધો પરિચય છે ।
રુદનમાં વાસ્તવિકતા છે ને હસવામાં અભિનય છે ॥

જે અંદરથી ખાલી છે, એને બહારની કોઈ વસ્તુ ભરી શકે તેમ નથી.

ચૂનાના દ્રાવણમાં સ્નાન કરે, તો ય કાગડો કાળો જ હોય છે. સુખના સેંકડો સાધનોની વચ્ચે પણ રાગી દુઃખી જ હોય છે. હા, આભાસ ને અભિનય સુખનો પણ હોઈ શકે છે, પણ એનો શો અર્થ ? એક ભિખારી કલ્પના કરે કે હું પ્રધાનમંત્રી કે ઉદ્યોગપતિ બની ગયો, એનો શો અર્થ ?

પેટનો ખાડો પૂરવાની ચિંતા તો યથાવત્ ઊભી જ છે. રાગી આભાસને વાસ્તવિકતા માને છે અને સુખ-દુઃખની ભ્રમમાં પડીને પોતાને દુઃખી કરે છે. વિરાગી વાસ્તવિકતાને જ વાસ્તવિકતા માને છે, અને તેથી કોઈ પણ નિમિત્તોની વચ્ચે એ સહજાનંદમાં મગ્ન રહે છે. કોલસામાં આળોટે, તો ય હંસ ધોળો હોય છે. દુઃખના સેંકડો નિમિત્તોની વચ્ચે પણ વિરાગી સુખી હોય છે.... **सदानन्दमश्नुते...**

વિરાગ એ સુખનું પરમ રહસ્ય છે. વિરાગમાં ભગવત્ત્વની ભવ્યતા છે. **नीतिवाक्यामृतम्**માં કહ્યું છે -

स खलु प्रत्यक्षं दैवतम्, यस्य परस्वेस्विव
परस्त्रीषु निःस्पृहं चेतः ।

પ્રત્યક્ષ ભગવાન છે એ, જેને પરધન અને પરસ્ત્રીમાં કોઈ જ સ્પૃહા નથી. **અષ્ટાવક્રગીતા**માં વિરાગની આ જ અસ્મિતાના દર્શન થાય છે -

सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा, मृत्युं वा समुपस्थितम् ।
अविह्वलमनाः स्वस्थो, मुक्त एव महाशयः ॥

આગમન કરનાર અનુરાગિણી સ્ત્રી હોય કે મૃત્યુ હોય, જેના મનમાં કોઈ જ વિહ્વળતા નથી. જે પૂર્ણપણે સ્વસ્થ છે, એ મહાશય મુક્ત જ છે. સ્ત્રી / પુરુષ કે મૃત્યુનો સંબંધ દેહ સાથે છે, ને વિરાગી દેહાતીત આત્મદશાની અનુભૂતિ કરે છે. જેમાં કેવળ પૂર્ણતા છે. કહેવાતા સુખના સાધનો એમાં કાંઈ સુધારી કે ઉમેરી શકતા નથી અને કહેવાતા દુઃખના સાધનો એનું કાંઈ બગાડી શકતાં નથી કે કાંઈ ચોરી શકતાં નથી. **અધ્યાત્મોપનિષદ્** આ જ વાત કહે છે -

अखण्डानन्दमात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः ।

સુખનું પરમ રહસ્ય છે વિરાગ.

વિરાગી જાણે છે, કે 'અખંડ આનંદની પૂર્ણતા એ જ મારા આત્માનું સ્વરૂપ છે.' એ પરમાનંદની અનુભૂતિ જેને પળે પળે રોમાંચિત કરી રહી છે, એનું રુંવાડું બાહ્ય પદાર્થોથી શી રીતે ફરકી શકે ? ભીતરના અલૌકિક આત્મસ્વરૂપને જે અનિમેષપણે નીરખી રહ્યો છે, એની પાંપણો બાહ્ય રૂપને જોવા માટે શી રીતે ઊંચી થઈ શકે ?...**वैराग्यस्य तदावधिः...**

રૂપકોશા આજે પણ નાચી રહી છે. રાગી દુઃખી છે. વિરાગી સુખી છે. આપણે શું થવું, એ આપણા હાથની વાત છે.

સંતનું સૌન્દર્ય

અવધૂતગીતા

ખળ ખળ વહેતી નદી છે, રમણીય કિનારો છે. એ કિનારાની રેતીમાં એક સંત બેઠાં છે. એમના ચહેરા પર પ્રશાંતતા પણ છે, પ્રસન્નતા પણ અને ધન્યતા પણ...निर्ग्रन्थास्तेऽपि धन्याः....ધ્યાનના અલૌકિક ઊંડાણમાંથી સંત બહાર આવ્યા છે...આંખો ખુલી છે...અને સામે દેખાય છે એક વીંછી. પાણીની નજીક એ સરકી રહ્યો છે. સંત હજી કાંઈ સમજે એની પહેલા તો વીંછી પાણીમાં પડી ગયો. જીવ બચાવવા એ તરફડી રહ્યો છે...સંતની કરુણા છલકી ઉઠી. તરત જ ત્યાં જઈને એમણે વીંછીને પોતાના હાથમાં લઈ લીધો. પ્રેમથી એને કિનારાના સુરક્ષિત સ્થાને મૂકવા જાય છે, ત્યાં તો વીંછીએ સંતને ભયંકર ડંખ દઈ દીધો. સંતને અસહ્ય વેદના થઈ, પણ તો ય એ જ પ્રેમ સાથે એમણે વીંછીને હળવેથી મૂકી દીધો.

સંત ફરી પોતાના સ્થાને બેસી ગયા. થોડી વાર થઈ અને ફરી વીંછી પર ધ્યાન ગયું. નાદાન વીંછી ફરી પાણીમાં પડી રહ્યો હતો. સંતે ફરી એને બચાવ્યો. ને વીંછીએ ફરી ડંખ માર્યો. ફરી બચાવ્યો ને ફરી ડંખ માર્યો. ચાર વાર આ ઘટના બની. એક યુવાન સંતની આ પ્રવૃત્તિને જોઈ રહ્યો હતો. એણે સંતને કહ્યું, ‘‘તમે રહેવા દો ને, એ એનો સ્વભાવ નહીં છોડે.’’ સંતે સ્મિત કરીને જવાબ આપ્યો, ‘‘એ એનો સ્વભાવ નથી છોડતો, તો હું મારા સ્વભાવ કેમ છોડું ?’’

‘વીંછી જેવો વીંછી પણ જો એના સ્વભાવને વળગી રહે છે. તો હું તો સંત છું. મારે પણ મારા સ્વભાવને વળગી રહેવું જોઈએ. ‘ડંખ મારવો’ એ એનો સ્વભાવ છે. ‘કરુણા’ એ મારો સ્વભાવ છે. આ છે સંતનું સૌન્દર્ય, સામાન્ય વ્યક્તિ જાત માટે જીવે છે. સંત જગત માટે જીવે છે. સામાન્ય વ્યક્તિ પોતાના દુઃખથી દુઃખી હોય છે. સંત બીજાના દુઃખથી દુઃખી હોય છે.

અવધૂતગીતા નામના ગ્રંથમાં સંતના આ અલૌકિક સૌન્દર્યના દર્શન થાય છે. શ્રી દત્તાત્રેય અવધૂત આ ગ્રંથના કર્તા છે. સંસ્કૃત ભાષામાં કાવ્યરૂપે રચાયેલ આ ગ્રંથમાં ૨૮૯ શ્લોક છે. આત્માનુભૂતિ, વિરાગરસ, અધ્યાત્મવિદ્યા અને સમાધિમાર્ગનું આ ગ્રંથમાં સૂક્ષ્મ નિરૂપણ કરેલ છે. તો સાથે સાથે જ તે ગુણોને

પામીને સંતનું સૌન્દર્ય કેવું ખીલી ઉઠે છે, તેનું પણ વર્ણન કરેલ છે. જેની ઝલક અહીં પ્રસ્તુત છે.

कृपालुरकृतद्रोह - स्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् ।
सत्यसारोऽनवद्यात्मा, समः सर्वोपकारकः ॥

સામાન્ય વ્યક્તિ જાત માટે જીવે છે. સંત જગત માટે જીવે છે.

(૧) **કૃપાળુ** - સંતનું આ પહેલું લક્ષણ છે. કૃપા એટલે કરુણા. વિશ્વના સર્વ જીવો પ્રત્યે જેના અંતરમાં કરુણા ઉભરાઈ રહી છે, એનું નામ સંત. કીડીથી માંડીને હાથી સુધીના સર્વ જીવો પ્રત્યે જેને દયા છે એનું નામ સંત. પૃથ્વી અને પાણી વગેરેના સૂક્ષ્મ જીવો પ્રત્યે પણ જેના હૃદયમાં વાત્સલ્ય છે, એનું નામ સંત. હૃદયનું આ વાત્સલ્ય સંતની આંખોમાં છલકે છે, અને સંતની વાણી અને વર્તનમાં પ્રગટે છે. સંતના આશીર્વાદથી સંકટો ટળી જાય, રોગો દૂર થાય, એવી જે ઘટનાઓ બને છે, તેમાં સંતનો આ વાત્સલ્યભાવ કારણ હોય છે. આધુનિક વિજ્ઞાન પણ આજે વિચારશક્તિની અસરકારકતાનો સ્વીકાર કરે છે, ત્યારે એવી ઘટનાઓમાં અશક્યપણું નથી.

(૨) **અકૃતદ્રોહ** - સંત એ કે જે દુનિયાના કોઈ પણ જીવનો દ્રોહ કરતા નથી, વાત્સલ્યનો મહાસાગર જેના હૈયામાં હિલોળા લઈ રહ્યો હોય, એ કોઈને દ્રોહ શી રીતે કરી શકે ? **આગમ**માં કહ્યું છે - **अवरज्झे वि ण कुप्पइ** - કોઈ પોતાને ગાળો આપે, માર મારે કે મારી નાંખવા સુધીનો પ્રયાસ કરે, સંતને એના પ્રત્યે મનમાં પણ ક્રોધ જાગતો નથી. નાનકડો બાળક એની માતાને લાત મારી દે, એવું પણ બને, પણ માતાનો એના પ્રત્યે શું પ્રતિભાવ હોય ? શું માતા એને લાત મારશે કે એના પર ગુસ્સે થશે ? ના, માતાના મુખ પર સ્મિત હશે. હૃદયમાં વાત્સલ્ય હશે, અને 'મારો વ્હાલો દીકરો'-આ લાગણી અકબંધ હશે. એક માતાને જે લાગણી પુત્ર માટે છે, તે જ લાગણી સંતને વિશ્વ માટે છે. સંત 'કૃપાળુ' છે, માટે જ 'અકૃતદ્રોહ' છે.

એક માતાને જે લાગણી પુત્ર માટે છે, તે જ લાગણી સંતને વિશ્વ માટે છે.

(૩) **તિતિક્ષુ** - તિતિક્ષાનો અર્થ છે સહન કરવું. જે સહનશીલ છે, તે તિતિક્ષુ છે. કોઈનું કશું ય સહન ન કરવું, એ સામાન્ય વ્યક્તિની ભૂમિકા છે. બધાંનું બધું જ સહન કરવું, એ સંતની ભૂમિકા છે. **ઉપદેશમાલા**માં કહ્યું છે - **साहू सहंति सव्वं णीयाण वि पेसपेसाणं** સંત સંન્યાસ

પૂર્વની અવસ્થામાં રાજા કે શેઠ વગેરે હોય. તે સમયના તેમના જે નોકર-ચાકર-દાસ વગેરે હોય, તે દાસના પણ દાસ જેવી વ્યક્તિ આજે સંતને સતાવતી હોય, તો ય સંત પ્રેમથી એને સહી લે. ન સામનો, ન ફરિયાદ, ન ક્રોધ, ન ઉચાટ, ન ખેદ, ન દીનતા...બસ. એ જ અસ્ખલિત પ્રસન્નતાનો પ્રવાહ....એનું નામ સંત. તાત્ત્વિક દૃષ્ટિએ વિશ્વમાં કોઈ સ્વતંત્ર હોય, તો એ સંત છે. કારણ કે એની પ્રસન્નતા પરાધીન નથી. વિવશતાથી સહન કરે, એ 'બિચારો' હોઈ શકે છે. પ્રસન્નતાથી સહન કરી શકે, એના જેવો સમ્રાટ બીજો કોઈ નથી.

(૪) **સત્યસાર** - જેને 'ખોટું' કહી શકાય એવું જેના જીવનમાં કશું જ ન હોય, એનું નામ 'સત્યસાર.' સંત અને સત્ય - આ બંને શબ્દોના મૂળમાં એક જ પદ છે - सत्. સર્વ સુખોની પ્રતિષ્ઠા सत् માં છે. માટે જ **ઉપનિષદો**માં પ્રાર્થના કરવામાં આવી છે - **असतो मा सद् गमय** - હે પ્રભુ ! તું મને અસત્‌માંથી સત્‌માં લઈ જા. મને દુર્જનમાંથી સજ્જન બનાવ અને સજ્જનમાંથી સંત બનાવ. દુર્જન અસત્‌ને અપનાવે છે અને સુખમાં ય રડતાં રહે છે. સંત સત્‌ને અપનાવે છે, અને દુઃખમાંય હસતા રહે છે.

વિવશતાથી સહન કરે, એ 'બિચારો' હોઈ શકે છે. પ્રસન્નતાથી સહન કરે, એના જેવો સમ્રાટ બીજો કોઈ નથી.

(૫) **અનવદ્યાત્મા**-અવદ્યનો અર્થ છે પાપ જેને સ્વપ્નમાં પણ પાપ કરવાનું મન થતું નથી, એ અનવદ્યાત્મા છે. પાપ પાંચ પ્રકારનું છે - (૧) હિંસા (૨) અસત્ય (૩) ચોરી (૪) અબ્રહ્મ (૫) પરિગ્રહ. આ પાંચ પાપો જ સર્વ દુઃખોને જન્મ આપે છે. સંતની પ્રસન્નતાનું રહસ્ય તેમની નિષ્પાપ વૃત્તિ છે. જેનું મૂળ જ ઉખડી ગયું છે, એ વૃક્ષ શી રીતે ફળ આપી શકે ? दुःखं पापात् - પાપ જ દુઃખનું મૂળ છે. દુઃખ પ્રત્યે થોડો પણ અણગમો હોય તો 'અનવદ્યાત્મા' બનવા જેવું છે. **જ્ઞાનસાર**માં કહ્યું છે - **भिक्षुरेकः सुखी लोके** - આખા વિશ્વમાં કોઈ સુખી હોય, તો એ સંત છે. કારણ કે એ 'અનવદ્યાત્મા' છે.

(૬) **સમ** - જે સમતાનો સ્વામી છે, એનું નામ 'સમ.'...સમતા...જેનાથી સોનું અને માટી બન્ને સરખા લાગે. જેનાથી સુખ અને દુઃખ બન્ને સમાન લાગે. જેનાથી શત્રુ અને મિત્ર એવો ભેદભાવ ન રહે...વિષમતા એ અશાંતિ અને સંક્લેશનો માર્ગ છે. સમતા એ શાંતિ અને સમાધિનો માર્ગ છે. હીરો ગમે છે અને

પથ્થર નથી ગમતો - આવી વિષમતામાંથી જ જગતની અશાંતિનું સર્જન થયું છે. સંતને મન હીરો ને પથ્થર - બન્ને સમાન છે. માટે એ પરમ શાંત દશાને અનુભવે છે. **અધ્યાત્મસાર** માં કહ્યું છે - **उपायः समतैकैव पीयूषघनवृष्टिवत्** - આખો સંસાર દાવાનળની જેમ ભડકે બળી રહ્યો છે. જન્મ, રોગ, ઘડપણ, મૃત્યુ, રાગ, દ્વેષની જ્વાળાઓ જીવોને શેકી રહી છે. આ સ્થિતિમાં કોઈ ઉપાય હોય, તો એ સમતા છે, કારણ કે સમતા એ અમૃતનો વરસાદ છે. સંત આ સુધાવર્ષામાં સ્નાન કરે છે, અને સર્વ સંતાપોથી મુક્ત રહે છે.

(૭) **સર્વોપકારક** - જે સર્વ પર ઉપકાર કરે, તે **સર્વોપકારક.** સંન્યાસ કે દીક્ષા સમયે સંત પરિવારનો ત્યાગ કરે છે, એવી આપણી માન્યતા છે. વાસ્તવમાં સંત સમગ્ર વિશ્વનો પોતાના પરિવાર તરીકે સ્વીકાર કરે છે. 'દીક્ષા'નું તાત્પર્ય હૃદયની વિશાળતા છે. હૃદય સંકુચિત હોય, ત્યાં સુધી 'મારો' ને 'પારકો' એવો વિચાર આવે છે. હિંસા, ચોરી વગેરે બધાં પાપો હૃદયની સંકુચિતતાથી થાય છે. સંતનું હૃદય વિશાળ છે. એમને મન કોઈ જ પારકું નથી. **यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्** - હું એક પંખી ને આખી દુનિયા મારો માળો - આ વેદોનો સંદેશ સંતના જીવનમાં જીવંત બન્યો છે....**उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्** - આખું વિશ્વ જ્યારે પોતાનો જ પરિવાર છે, ત્યાં પક્ષપાત શી રીતે હોઈ શકે ?...સર્વોપકાર...વિજ્ઞાનીઓ સો વર્ષના સંશોધનો પછી દવાથી જે રોગ નથી મટાડી શકતા, એ રોગ 'સંત'ના દર્શનથી મટી શકે છે. સુખના લાખો સાધનો જે આનંદ નથી આપી શકતા, એ આનંદ 'સંત'ને કરેલું વંદન આપી શકે છે. સંતની અસ્મિતા જ શાંતિનું સામ્રાજ્ય છે, અને શાંતિપ્રસાર જેવો ઉપકાર બીજો કોઈ જ નથી.

અવધૂતગીતામાં કહેલા આ સાત લક્ષણો આપણામાં જેટલા અંશે હોય, એટલા અંશે આપણામાં સંતત્વ છે. સુખનો સંબંધ માત્ર સંતત્વ સાથે છે. 'સંતત્વ'ને આવકારીએ, અને સુખી થઈએ.

●●●

આર્ષ વિશ્વ

આચાર્ય કલ્યાણબોધિ

જીવન જીવવાની કળા

ધર્મોપનિષદ્

નદીના પાણીને ચીરતી ચીરતી હોડી આગળ વધી રહી છે. શેઠ સહેલગાહનો આનંદ લઈ રહ્યા છે, એ સમયે એમને કાંઈ તુક્કો સૂઝ્યો. નાવિકને પૂછ્યું, ''અલ્યા, તું કાંઈ ભણ્યો-ગણ્યો છે કે નહીં ?'' નાવિકે સરળતાથી જવાબ આપ્યો, ''ના, મારે તો કાળા અક્ષર ભેંસ બરાબર છે.'' શેઠે કહ્યું, ''તો તારી પા જિંદગી પાણીમાં ગઈ. ઠીક છે. તે પૈસા કેટલા ભેગા કર્યા છે ?'' નાવિકે જે હતું એ કહી દીધું, ''ફૂટી કોડી ય નથી. હું તો રોજ કમાઉં છું, ને રોજ ખાઉં છું.'' ''અરે રે, તો તો તારી અડધી જિંદગી પાણીમાં ગઈ. પણ એ તો કહે, તું પરણ્યો છે કે નહીં ?'' આ વખતે નાવિક જરા ફિક્કુ હસી પડ્યો...''શેઠ ! મારા જેવા ગરીબને દીકરી કોણ આપે ?'' ''ઓહ...તારી પોણી જિંદગી પાણીમાં ગઈ.''

હજી તો આ વાત ચાલે છે, ત્યાં પાણીની એક જોરદાર થપાટ હોડીને વાગી. એક નાનું પાટિયું હોડીમાંથી છૂટ્ટું પડી ગયું, પાણી પૂર વેગે હોડીમાં અંદર આવવા લાગ્યું. શેઠ ફાટી આંખે જોઈ રહ્યા નાવિકે ઝડપથી શેઠને પૂછ્યું, ''શેઠ ! તમને તરતાં તો આવડે છે ને ?'' શેઠે ગભરાટ સાથે જવાબ આપ્યો, ''ના.'' ''તો પછી તમારી આખી જિંદગી પાણીમાં ગઈ.''

પછી શું થયું, એ કહેવાની જરૂર નથી. વાત માત્ર એ શેઠની નથી. સમાજની, દેશની અને દુનિયાની છે. આજે વ્યક્તિ સ્પોકન ઇંગ્લીશના ક્લાસ ભરી ભરીને દેશી / વિદેશી ઇંગ્લીશ બોલવા લાગે છે. નાની-મોટી ડિગ્રી મેળવી લે છે. પૈસા કમાવાની તરકીબો શીખી લે છે. 'ફેર સ્કીન'વાળી કન્યા કે મૂરતિયાને પસંદ કરી લે છે. પણ જીવનમાં અનેક પ્રકારના દરિયા આવતા હોય છે, જેમને તરતા તેમને આવડતું નથી. ને પરિણામ એ જ આવે છે, જે એ શેઠનું આવ્યું હતું.

ધર્મોપનિષદ્ જીવન જીવવાની કળા શીખવાડે છે. જીવનમાં આવતા દરિયાઓને તરતાં શીખવાડે છે. દુઃખમાં હસતાં શીખવાડે છે. સુખમાં સ્વસ્થ રહેતાં શીખવાડે છે, પ્રલોભનો સમક્ષ અણનમ રહેતાં શીખવાડે છે. પારિવારિક પ્રેમ, શાંતિ

અને વિશ્વાસને જાળવી રાખતાં શીખવાડે છે. અને એ વ્યક્તિત્વનું નિર્માણ કરે છે, જે વ્યક્તિના પોતાના હિતમાં તો છે જ, સમાજના, દેશના અને જગતના એક એક જીવના હિતમાં છે. **ધર્મોપનિષદ્**નું હાર્દ પણ આ જ છે, કે જે વસ્તુ પ્રત્યેક જીવના હિતમાં નથી હોતી, એ વ્યક્તિના હિતમાં પણ નથી હોતી. વ્યક્તિના હિતમાં એ જ વસ્તુ હોય છે, જેનાથી સમાજનું શારીરિક અને માનસિક સ્વાસ્થ્ય જળવાઈ રહે. જેમાં દેશદ્રોહનો અંશ પણ ન હોય, અને જેનાથી વિશ્વનો નાનામાં નાનો જીવ પણ દુભાતો ન હોય.

જે વસ્તુ પ્રત્યેક જીવના હિતમાં નથી હોતી, તે વસ્તુ વ્યક્તિના હિતમાં પણ નથી હોતી.

ધર્મોપનિષદ્ના કર્તા કોઈ એક વ્યક્તિ નથી. આ એક મનનીય સંગ્રહ ગ્રંથ છે. જેમાં વેદો, પુરાણો, આગમો, ઉપનિષદો, ગીતા, મહાભારત, ચાણક્યસૂત્ર, ત્રિપિટક, ગ્રંથસાહિબ, સંહિતા અને કબીરવચનથી માંડીને કુરાન અને બાઇબલ સુધીના ધર્મશાસ્ત્રોના સંદર્ભોને વિષયાનુસાર પ્રસ્તુત કરવામાં આવ્યા છે. સંસ્કૃત, પ્રાકૃત, પાલી, ઉર્દુ વગેરે ભાષાના આ સંદર્ભોને સહુ સમજી શકે, તે માટે પ્રત્યેક સંદર્ભની સાથે સાથે જ તેનો સરળ હિંદી અને અંગ્રેજી અનુવાદ આપવામાં આવ્યો છે.

ભારતના અને વિશ્વના કોઈ પણ દેશના સત્તાધીશો અને શિક્ષણખાતાના મંત્રીઓ જો ખરેખર લોકકલ્યાણ કરવા ઈચ્છતાં હોય, તો તેમણે નર્સરી / બાળમંદિર / આંગનવાડીથી માંડીને કોલેજ સુધીના સમગ્ર શિક્ષણમાં **ધર્મોપનિષદ્** ને પાઠ્યપુસ્તક તરીકે સ્થાન આપવું જોઈએ.

દર વર્ષે દશમા અને બારમા ધોરણોની પરીક્ષાઓ આવે છે અને વિદ્યાર્થીઓમાં ડિપ્રેશનથી માંડીને આપઘાત સુધીના સંખ્યાબંધ કિસ્સાઓ બને છે. રિઝલ્ટના દિવસો આવે ને ઠેર ઠેર સોળ અને અઢાર વર્ષના કિશોર - કિશોરીઓની નનામી નીકળે છે. થોડી ચકચાર. થોડો હોબાળો...થોડી વિચારણાઓ ને ફિર વો હી રફતાર. પરીક્ષાઓની પદ્ધતિને કેમ હળવી બનાવવી એની જાત-જાતની મંત્રણાઓ ચાલે છે, પણ પરિસ્થિતિના મૂળ સુધી જવાનું કેટલાને સૂઝે છે ?

બારમા ધોરણના એક વિદ્યાર્થી રિઝલ્ટના દિવસે સવારે જ ભયંકર ડિપ્રેશનનો શિકાર બની ગયો. ખોટી કલ્પનાઓના પ્રવાહમાં તણાઈને એણે આપઘાત કરી

લીધો. પરિવાર ઉપર જાણે વીજળી તૂટી પડી. કરુણ કલ્પાંતે આખી સોસાયટીને ગુંજવી દીધી. સાંજે સ્મશાનેથી પાછા આવ્યા, ત્યારે ઘરે કોઈ રિઝલ્ટની માહિતી આપી ગયું હતું. આપઘાત કરનાર એ વિદ્યાર્થીને ૯૧% આવ્યા હતાં.

વાત ખૂબ અફસોસની છે, પણ આપણે માત્ર અફસોસ નથી કરવો, મૂળમાં જઈને મંથન કરવું છે. બારમા ધોરણમાં ૯૧% લાવનાર વિદ્યાર્થી માટે આપણે કહી શકીએ કે એણે પોતાના જીવનના બાર વર્ષ સુધી ખૂબ જ નિષ્ઠાથી અભ્યાસ કર્યો હશે. પ્રત્યેક ધોરણમાં એ તેજસ્વી પરિણામ લાવ્યો હશે અને તેના પરથી અનુમાન કરી શકીએ કે સરકારે તૈયાર કરેલ પાઠ્યપુસ્તકોનો તેણે શ્રેષ્ઠ અભ્યાસ કર્યો હશે. આટલો અભ્યાસ કર્યા બાદ પણ એ વિદ્યાર્થી આવી ચેષ્ટા કરે, એના માટે એ વિદ્યાર્થીની જ ખામી સમજવી કે જે શિક્ષણ એણે લીધું છે એની પણ ખામી સમજવી ?

વિદ્યાર્થીના આપઘાત પાછળ કોણ જવાબદાર ? વિદ્યાર્થી ? કે એને આપવામાં આવેલું નિરુપયોગી શિક્ષણ ?

ઘરકામ, નોકરી વગેરેની જવાબદારીઓની સાથે સાથે જે માતા-પિતાએ બાર કે પંદર વર્ષો સુધી જે સંતાનોને સ્કુલે પહોંચાડવા અને પાછા લાવવા માટે. હાડમારીઓ વેઠી છે, પરસેવાના પૈસાનું પાણી કર્યું છે, સ્કુલ-ટ્યુશન-ક્લાસની કમરતોડ 'ફી'ના બોજા ઉઠાવ્યા છે. રે...અબજો રૂપિયાથી પણ જેનું મૂલ્યાંકન ન થઈ શકે એવી સંતાનની એક એક ક્ષણનો વિનિયોગ જે માતા-પિતાએ કેળવણી માટે કર્યો છે, એ માતા-પિતાને શિક્ષણતંત્ર શું બદલો આપે છે ? કરોડો માતાઓ એમના લાડકવાયાને વહેલી સવારે કાચી ઉંઘમાંથી ઉઠાડે છે. સો મણની ચિંતાના ભાર સાથે સ્નાન, નાસ્તો વગેરે પ્રભાતક્રમના કાર્યો કરાવે છે. અદ્ધર શ્વાસે ભાગ-દોડ કરીને સ્કુલ બસના આગમનની ક્ષણને સાચવી લે છે અને બસનો માણસ બાળકને ઉંચકીને બે દાદરા ઉપર ચડાવી દે એટલે એ માતાઓ રાહતનો શ્વાસ લે છે. પણ લાખ રૂપિયાનો પ્રશ્ન એ છે, કે ખરેખર એમાં રાહત માનવા જેવી હોય છે ખરી ? આટ- આટલો ભોગ આપીને પોતાના કાળજાની કોર જેવા સંતાનને માતા-પિતાઓ જે શિક્ષણતંત્રના હવાલે કરે છે, એ શિક્ષણતંત્રને પોતાની જવાબદારીનો કેટલો ખ્યાલ છે ? એ શિક્ષણતંત્ર જે શિક્ષણ આપી રહ્યું છે, એમાં જીવનોપયોગી શિક્ષણ કેટલું હોય છે ?

નાપાસ થવાથી કે અપેક્ષિત ટકા ન આવવાથી એક કિશોર જંતુનાશક દવાને ગટગટાવીને જાય છે, અંગત (!) જીવનમાં મમ્મીની દખલગિરી (!) થી એક કિશોરી છઠ્ઠા માળેથી નીચે ઝંપલાવી દે છે. સાસુ કે નણંદના બે શબ્દો સહન ન થવાથી નવવધૂ કેરોસીન છાંટીને બળી મરે છે. નોકરી માટે ભટકીને થાકી ગયેલો યુવાન ટ્રેનના પાટા પર સૂઈ જાય છે.

જે શિક્ષણ જીવનની વાસ્તવિકતાઓને સ્વીકારવાની પાયાની કળા પણ શીખવી શક્યું નથી, તે શિક્ષણે પોતાની જવાબદારી કેટલી નિભાવી છે ? હાથમાં પૈસો આવતાની સાથે પુત્ર પિતાનું હડહડતું અપમાન કરતો થઈ જાય અને ઘરમાં પત્ની આવતાની સાથે માતાને ત્રાસ આપતો થઈ જાય, એ કલંક પુત્રનું જ ? કે એનું ઘડતર કરનારા શિક્ષણનું પણ ? ઘરડાઘરોમાં આંસુ સારતા મમ્મી-પપ્પાઓએ કદી કલ્પના કરી હતી ખરી, કે પુત્રને 'લાયક' બનાવવા માટે અમે એને જે શિક્ષણના હવાલે કરીએ છીએ એ શિક્ષણ એને એટલો બધો લાયક (?) બનાવી દેશે, કે પછી પુત્ર અમને જ 'નાલાયક' સમજવા લાગશે ?

જે શિક્ષણે શરીરના અવયવોને ઓળખતાં શીખવ્યું. રોગના નિદાનો અને દવાઓ શીખવી. સારવારોની વિવિધ પદ્ધતિઓ શીખવી. પણ ગરીબ દર્દીઓને લૂંટવા નહીં, એવું ન શીખવ્યું. શ્રીમંત દર્દીઓને ઠગવા નહીં, એ ન શીખવ્યું. બિનજરૂરી ઓપરેશનો કરીને કોઈના જીવન સાથે રમત ન કરવી, એ ન શીખવ્યું, નકામી ને હાનિકારક દવાઓ આપીને કોઈના આરોગ્ય સાથે ચેડા ન કરવા એ ન શીખવ્યું, પોતાના પર વિશ્વાસ મૂકીને જે સ્ત્રી-દર્દી પોતાની કેબિનમાં આવી છે, એના શરીર સાથે અડપલા કરીને એનો વિશ્વાસઘાત ન કરવો, એ ન શીખવ્યું, એ શિક્ષણે સમાજનું કલ્યાણ કર્યું છે ? કે પછી સમાજનો દ્રોહ કર્યો છે ? મોટામાં મોટો ડૉક્ટર પણ નીચમાં નીચ હરકત ન કરે, એ માટે ઓપરેશન થિયેટરોમાં ફરજિયાત કેમેરા રાખવાનો આદેશ કર્યા બદલ સરકારે ગૌરવ લેવા જેવું છે કે શરમ અનુભવવા જેવું છે ? શું આ આદેશ ડૉક્ટરની અવિશ્વસનીયતાને પુરવાર નથી કરતો ? અને એક સુશિક્ષિત ડૉક્ટરની અવિશ્વસનીયતા સમગ્ર શિક્ષણતંત્રની અવિશ્વસનીયતાને પુરવાર નથી કરતી ?

ભ્રષ્ટ હૉસ્પિટલોના આઈ.સી.સી.યુ.માં દિવસો સુધી વેન્ટિલેટરથી શ્વાસ લેતા મડદાં જેવી લાખો શિક્ષિતોની સ્થિતિ છે. જેમનામાં શ્વાસ તો છે, પણ લાગણીની

ચેતના નથી. તેઓ ગરીબોના લોહી ચૂસી શકે છે, ઘરાકો ને કલાયન્ટોને ઠંડે કલેજે છેતરી શકે છે, કોઈની કબર પર પોતાનો મહેલ બનાવી શકે છે, કોઈના આંસુમાં 'નમક' શોધી શકે છે, કોઈની ચિતા પર પોતાની ભાખરી શેકી શકે છે. અને કહેતાં પણ શરમ આવે એવા અક્ષમ્ય અપરાધો કરી શકે છે.

દોષ એમનો નથી. દોષ એમને આપવામાં આવેલા શિક્ષણનો છે. એક કૂમળા બાળકને જે સમયે જેમ વાળો તેમ વાળી શકાય તેમ હતું, ત્યારે આપણે એને જીવનોપયોગી અને સમાજોપયોગી શિક્ષણ ન આપ્યું. એના પર વ્યર્થ ગોખણપટ્ટીના બોજાઓ ખડકી દીધાં. જેનો એના સામાજિક કે વ્યવસાયિક જીવન સાથે કોઈ સંબંધ ન હતો, એવા વિષયોના ભાર લાદી દીધાં. એના અમૂલ્ય વર્ષો એક મજૂરની જેમ આ બોજાઓને ઉપાડવામાં જતાં રહ્યા. જે અત્યંત આવશ્યક શિક્ષણ હતું, એના બારાક્ષરી શીખવાનો પણ અવકાશ ન રહ્યો. અને બીજી બાજુથી અસમાજિક તત્ત્વોએ જાત-જાતના માધ્યમો દ્વારા એના ક્રોધને અને લોભને ઉશ્કેર્યો, એને છળ-કપટ કરતાં શીખવાડ્યું. એને પૈસા પાછળ પાગલ બનાવ્યો. એની કામવૃત્તિને ભયજનક રીતે સતેજ કરી. પરિણામ આપણી સામે છે.

એક વૃક્ષને યોગ્ય સમયે પાણી ન મળ્યું. એ સૂકાવા લાગ્યું એના પાંદડાં પીળાં પડીને સૂકાવા લાગ્યાં. હવે એ સૂકાં પાંદડાંની ફરિયાદ કરવાનો શો અર્થ ? હવે એના પર પાણી ઢોળવાનો શો ફાયદો ? હવે અવસર ગયો. હા, જેનો અવસર છે એવા વૃક્ષના મૂળમાં સિંચન કરો, તો અર્થ સરે. ભ્રષ્ટાચાર, હિંસા ને જાતીય સતામણીઓની બદીથી દેશ ખદબદી રહ્યો છે. આપણે હોબાળા મચાવીએ છીએ, આંદોલનો કરીએ છીએ, જાત-જાતના કાયદાઓ ઘડી કાઢીએ છીએ. પણ આ બધું કદાચ મડદાંની ચિકિત્સા જેવું છે. મડદું બેઠું થઈ જાય, તો એ આનંદની વાત છે. પણ જે જીવિત છે - જેની પાછળ કરેલો પ્રયાસ ખરેખર સફળ થઈ શકે છે. જેને જીવનોપયોગી શિક્ષણ આપવા માટે કરોડોનું અર્થતંત્ર અને કરોડોની સ્થાવરમિલકતો છે...લાખો શિક્ષકો રોકેલા છે. એની ધરાર ઉપેક્ષા શી રીતે થઈ શકે ? મૂળમાં સિંચન ન કરવું અને પછી સૂકા પાંદડાને જોઈને હોબાળો મચાવવો, એમાં મૂર્ખામી સિવાય બીજું કશું જ નથી.

આપણે આપણી જાતને દરિદ્ર સમજી લીધી છે, અને માટે જ આપણે બધું જ પશ્ચિમથી આયાત કરવામાં માનીએ છીએ. માટે જ આપણા પાઠ્યપુસ્તકોમાંથી

પિતૃભક્તિ ને ભ્રાતૃભાવના અમૂલ્ય પાઠો શીખવતા રામાયણના રહ્યા સહ્યા અંશો અદૃશ્ય થતા જાય છે અને જેક એન્ડ જીલ જેવા તત્ત્વહીન નિરર્થક શબ્દોના ભૂંસા પગપેસારો કરતાં જાય છે. સત્તાધીશોના હૈયે દેશના કૂમળા બાળકોનું હિત કેટલું વસ્યું છે, એ તો ખબર નથી. પણ માતા-પિતાઓ પોતાના સંતાનોના હિત સાથે કોઈ જ કોમ્પ્રોમાઇઝ કરવા માંગતા નથી, એની પૂરી ખાતરી છે. જે માતા-પિતાઓ 'ફી'ઓ ચૂકવી ચૂકવીને સંતાનોના હિત ખાતર એમને જે શિક્ષણસંસ્થાને સોંપે છે, એની પાસે સંતાનોના સર્વાંગીણ વિકાસની અપેક્ષા રાખવાનો તેમનો પૂરો અધિકાર છે. જો માતા-પિતાઓ જાગશે, તો સરકાર જરૂર જાગશે. સમજુ શિક્ષકો, વિચક્ષણ આચાર્યો અને હિતેચ્છુ માતા-પિતાઓ ટૂંક સમયમાં આખા દેશની કાયાપલટ કરી શકે છે.

ધર્મોપનિષદ્ એ ભારતની સ્વર્ણીય પ્રાચ્ય સમૃદ્ધિ છે. એ આર્ષદષ્ટા મહાપુરુષોનો અણમોલ વારસો છે. સમાજને સ્વસ્થ અને તંદુરસ્ત બનાવવા માટે એ આરોગ્ય-ટોનિક છે. સંસ્કારોની સુવાસ પ્રસરાવતું એ મઘમઘતું ગુલાબ છે. જીવનમાં પૈસાથી નહીં, પણ ગુણોથી સુખી બની શકાય છે. આજે પણ વિશ્વમાં ધનવાન નહીં પણ ગુણવાન જ સુખી છે. **ધર્મોપનિષદ્** માં ગુણોનો પ્રસાર કરવા માટે આગેવાની લેવાનું સામર્થ્ય છે.

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् - જે તમને પોતાને પ્રતિકૂળ છે, તેવું વર્તન તમે બીજા પ્રત્યે ન કરો - આ એક સુવાક્યમાં હજારો હત્યાઓ અટકાવવાની શક્તિ છે.

न पापं प्रति पापः स्यात्, साधुरेव सदा भवेत् - દુર્જન પ્રત્યે પણ દુર્જન ન થવું. પણ હંમેશા સજ્જન જ રહેવું - એ એક સુનીતિ વેરના અનર્થોને રોકી શકે છે.

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् - સાચું બોલવું, પ્રિયવચન બોલવું, સાચું પણ એવું ન બોલવું, જેનાથી કોઈનું દિલ દૂભાય - આ એક જ સુભાષિત ઝગડાઓ, વિવાદો અને યુદ્ધોથી બચાવી શકે છે.

मा हिंसीस्तन्वी प्रजाः - કોઈ પણ જીવની હિંસા ન કરો - આ એક સુવચન સમસ્ત પર્યાવરણને સુરક્ષિત કરી શકે છે.

अहिंसा परमो धर्मः - અહિંસા એ જ પરમ ધર્મ છે - આ સુવર્ણવાક્ય કોમી રમખાણો અને હુલ્લડોને અટકાવી શકે છે.

लोभः सर्वार्थबाधकः - લોભ બધી સિદ્ધિઓમાં બાધક છે. - આ એક વાક્યનો સમ્યક્ બોધ દેશભરના ભ્રષ્ટાચારોને સમાપ્ત કરી શકે છે.

भुङ्क्ते स केवलं पापं, भुङ्क्ते यो ह्यतिथिं विना - તે માત્ર પાપ જ ખાઈ રહ્યો છે, કે જે અતિથિના વિના જમે છે - આ એક સુવચન દેશપ્રેમ અને ભાઈચારાની ભાવનાને જીવંત બનાવી શકે છે.

मातृवत् परदाराणि, परद्रव्याणि लोष्ठवत् - પરસ્ત્રીને માતા સમાન જોવી અને પરધનને માટીના ઢેફા સમાન જોવું - આવું એક સુભાષિત વ્યભિચારો, જાતીય સતામણીઓ અને ચોરીઓને દૂર કરી શકે છે.

मद्यं कारणमापदाम् - દારૂ આપત્તિઓનું કારણ છે. આવું એકાદ વાક્ય વ્યસનમુક્તિનો નાદ જગાવી શકે છે.

पितरो देवाः - માતા-પિતા દેવતા સમાન છે. આવું એક વાક્ય ઘરને સ્વર્ગ બનાવી શકે છે.

इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिर्वर्द्धते - ઈન્દ્રિયોનું નિયંત્રણ કરવાથી બુદ્ધિ વૃદ્ધિ પામે છે - આવું એક સુભાષિત સમાજમાં શિષ્ટતા જાળવી રાખે છે, ને માધ્યમોના દુરુપયોગને અટકાવે છે.

नास्ति क्रोधसमो रिपुः - ક્રોધ જેવો કોઈ શત્રુ નથી - આવું એકાદ સુવર્ણવાક્ય મનની શાંતિ આપે છે અને અને દુર્ઘટનાઓને અટકાવે છે.

दानं सब्बत्थसाधकम् - દાન સર્વ પ્રયોજનોને સિદ્ધ કરે છે. આવું એક સુભાષિત દેશમાં ત્યાગ અને સમર્પણની ભાવના જીવંત રાખે છે.

આ તો માત્ર ઝલક છે. સંસારની એવી કોઈ સમસ્યા નથી, જેનું સમાધાન આ આર્ષ વારસામાં ન હોય. એવું કોઈ સુખ નથી, જે આ વચનોના અનુસરણથી ન મળે. સમાજની એવી કોઈ બદી નથી. જે આના શિક્ષણથી ન ટળે.

આખું વિશ્વ આજે હિંસાના ખપ્પરમાં હોમાઈ રહ્યું છે. ભ્રષ્ટાચાર અને દુરાચારની દુર્ગન્ધથી ખદબદી રહ્યું છે. હજી મૂંછનો ઘેરો ન ફૂટ્યો હોય, એવો પુત્ર પિતાને રિવોલ્વરથી શૂટ કરી દે અને બાર વર્ષની કન્યા કુંવારી માતા બને એવી ઘટનાઓ દુનિયાના અનેકાનેક શહેરોમાં સામાન્ય બની છે, આ સ્થિતિમાં ભારતે દુનિયાના ચીલે ચાલીને બરબાદ થવું ? કે પોતાની પ્રાચીન સંસ્કૃતિના ભવ્ય વારસાને

સ્વીકારીને વિશ્વોદ્ધાર માટેની આગેવાની લેવી ?

ખૂન કે જાતીય સતામણીની એક જ ઘટના પૂરા બે પરિવારોનું ધનોત પનોત કાઢી નાખે છે. વાસનાના વમળો સુખી લગ્નજીવનને રફે-દફે કરી નાખે છે. નિરંકુશ લોભ ભયાનક અનર્થોને આમંત્રણ આપે છે. ફાટ ફાટ થતો ક્રોધ આખા ઘરને નરક બનાવી દે. છે. જેના મનમાં આવા દોષોના સાપોએ રાફડા બાંધ્યા છે, એ ભલે હાઈએજ્યુકેટેડ હોય, ભલે એના નામની પાછળ ડિગ્રીઓના લાંબાલચક પૂંછડા લાગતા હોય. વાસ્તવમાં એ મૂર્ખ છે. સંત કબીરનાં વચનો યાદ આવે છે.

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान ।

तब लग पंडित मूरख ही, कबीर एक समान ॥

સાચું શિક્ષણ એ છે કે જે દોષોને દૂર કરે અને સદ્ગુણોનું આરોપણ કરે. જીવનને સુખી બનાવવાનો એક માત્ર આ જ ઉપાય છે. માતા-પિતાઓ, અધ્યાપકો, આચાર્યો અને શિક્ષામંત્રીઓએ મળીને વ્યક્તિ, સમાજ અને દેશના હિત ખાતર આ ઉપાય અપનાવી લેવો જોઈએ અને તેમની હિતેચ્છુતાને પુરવાર કરી દેવી જોઈએ.

સાચું શિક્ષણ એ છે કે જે દોષોને દૂર કરે અને સદ્ગુણોનું આરોપણ કરે. જીવનને સુખી બનાવવાનો એક માત્ર આ જ ઉપાય છે.

●●●

આર્ષ વિશ્વ

આચાર્ય કલ્યાણબોધિ

આહાર મીમાંસા

વિશ્વના ધર્મોની દૃષ્ટિમાં

વિશ્વના બધા ધર્મોએ જીવમાત્રમાં પરમાત્માની ઝલક જોવા કહ્યું છે અને અહિંસાનો 'પરમ ધર્મ' રૂપે સ્વીકાર કર્યો છે. આહાર માટે પણ કોઈ જીવની હિંસા ન કરવી જોઈએ, આ વાત પર સર્વ ધર્મ એકમત છે. મોટા ભાગના ધર્મોએ તો વિસ્તારપૂર્વક માંસાહારના દોષ બતાવ્યા છે અને કહ્યું છે, કે માંસાહારથી આયુષ્યનો ક્ષય થાય છે, અને પતન થાય છે. જો કોઈ પણ વ્યક્તિ એવું માનતી હોય, કે મારા ધર્મમાં માંસાહારનો નિષેધ નથી, તો એ એનો ભ્રમ છે. ચાલો જોઈએ, કે આહારમીમાંસાના વિષયમાં વિભિન્ન ધર્મદૃષ્ટિઓ શું કહે છે ?

(૧) **હિંદુ ધર્મ** - સર્વ જીવ ઈશ્વરના જ અંશ છે. અહિંસા, દયા, પ્રેમ, ક્ષમા આદિ ગુણો ઘણા મહત્ત્વના છે. માંસાહાર અત્યંત ત્યાજ્ય છે અને દોષપૂર્ણ છે. માંસાહાર કરવાથી આયુષ્યનો ક્ષય થાય છે. **અથર્વવેદ** (૮-૬-૨૩)માં કહ્યું છે -

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये कविः ।

गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥

જેઓ કાચું કે પાકું માંસ ખાય છે, જેઓ ઇંડા ખાય છે, તેમનો અહીંથી અમે નાશ કરીએ છીએ. **ઋગ્વેદ**માં પણ કહ્યું છે, કે શાકાહાર એ સર્વોત્તમ આહાર છે અને માંસાહાર એ નિંદનીય છે. **મહાભારત**ના અનુશાસન પર્વમાં કહ્યું છે કે માંસ ખાનાર, માંસનો વેપાર કરનાર અને માંસ માટે જીવહત્યા કરનાર - એ ત્રણે દોષિત છે. માંસાહારી જ્યાં પણ જન્મ લે છે, ત્યાં સુખપૂર્વક રહી શકતો નથી. 'માંસ'નો અર્થ છે - **मांस भक्षयिताऽमुत्र** - જેનું માંસ હું ખાઈ રહ્યો છું, એ મને પરલોકમાં ખાશે.

ભગવદ્ગીતામાં કહ્યું છે કે માંસાહાર કુસંસ્કારોની તરફ લઈ જાય છે, બુદ્ધિને ભ્રષ્ટ કરે છે તથા રોગ અને આળસ આદિ દુર્ગુણો આપે છે.

જેઓ કાચ્ચું કે પાક્કું માંસ ખાય છે, જેઓ ઈંડા ખાય છે, તેમનો અમે અહીંથી નાશ કરીએ છીએ - અથર્વવેદ

(૨) **ઈસાઈ ધર્મ** - ઈસા મસીહને જાન દિબૈપટિસ્ટ પાસેથી જ્ઞાન મળ્યું હતું, જે માંસાહારના સખ્ત વિરોધી હતાં. ઈસા મસીહના ઉપદેશના બે મુખ્ય સિદ્ધાન્ત છે -

Thou shall not kill.

તું જીવહત્યા નહીં કરે.

Love thy neighbour

પોતાના પાડોશીને પ્રેમ કરો.

'ગાસ્પલ ઑફ પીસ ઑફ જીસસ ક્રાઇસ્ટ' માં ઈસા મસીહે કહ્યું છે - 'સત્ય તો એ છે, કે જે હત્યા કરી રહ્યો છે, તે વાસ્તવમાં પોતાની જ હત્યા કરી રહ્યો છે. જે મારેલા જાનવરનું માંસ ખાય છે, તે વાસ્તવમાં પોતાનું મડદું પોતે જ ખાય છે. જાનવરોનું મૃત્યુ એનું પોતાનું મૃત્યુ છે, કારણ કે આ અપરાધની સજા મૃત્યુથી ઓછી હોઈ જ ન શકે. જો તમે શાકાહારને પોતાનું ભોજન બનાવશો, તો તમને જીવન અને શક્તિ મળશે. પણ જો તમે મૃત (માંસાહાર) ભોજન કરશો, તો એ મૃત આહાર તમને પણ મારી નાખશે. કારણ કે માત્ર જીવનથી જ જીવન મળે છે. મૃત્યુથી હંમેશા મૃત્યુ જ મળે છે.

જાનવરોનું મૃત્યુ એનું પોતાનું મૃત્યુ છે, કારણ કે આ અપરાધની સજા મૃત્યુથી ઓછી હોઈ જ ન શકે. Thou shall not kill - તું જીવહત્યા નહીં કરે. - ઈસા મસીહ

(૩) **શિન્તો ધર્મ** - આ ધર્મના અનુયાયીઓ જાપાનમાં વસેલા છે. આ ધર્મની માન્યતા છે કે 'જે લોકો દયા કરે છે, તેમનું આયુષ્ય વધે છે.'

(૪) **તાઓ ધર્મ** - આ ધર્મના અનુયાયીઓ ચીન તથા એશિયામાં વસેલા છે. આ ધર્મની માન્યતા છે કે બધી જ ક્રિયાઓની પ્રતિક્રિયાઓ હોય છે.

If you kill, you will also be killed.

જો તું હત્યા કરીશ, તો તારી પણ હત્યા કરવામાં આવશે.

(૫) **કન્ફ્યૂશસ ધર્મ** - આ ધર્મના અનુયાયીઓ ચીન, જાપાન, બર્મા અને

થાઈલેંડમાં વસેલા છે. આ ધર્મની માન્યતા છે કે માંસાહારનો ત્યાગ એ ધર્મની પરિપૂર્ણતા છે.

(૬) **પારસી ધર્મ** - આ ધર્મના ગ્રંથ જેન્દ અવેસ્તામાં કહ્યું છે, કે જીવોની હત્યા એ અધાર્મિક છે.

(૭) **શીખ ધર્મ** - ગુરુ નાનક દેવે માંસાહારનો સ્પષ્ટ શબ્દોમાં વિરોધ કર્યો છે, અને કહ્યું છે કે જે લોહી લાગવાથી કપડું ગંદુ અને અપવિત્ર થઈ જાય છે, એ લોહીને જે માણસ પીવે છે, તેનું મન કેવી રીતે નિર્મલ રહી શકે ?

जे रत लागे कापड़े, जामा होई पलीत ।

ते रत पीवे मानुषा, तिन कर्यूं निर्मल चीत ? ॥

ગુરુ સાહેબોએ સ્પષ્ટરૂપે હિંસા ન કરવાનો આદેશ આપ્યો છે, અને જ્યારે હિંસા જ પ્રતિબંધિત છે, ત્યારે માંસ-માછલી ખાવાનો સવાલ જ રહેતો નથી. શિરોમણિ ગુરુદ્વારા પ્રબંધક કમિટીએ ઊંડી તપાસ કર્યા બાદ ગુરુ સાહેબના નિશાન અને હુકમનામાઓને પુસ્તકરૂપે છપાવ્યા છે. તેમાં એક હુકમનામું આ છે -

दारु कोई नाही खाणा ।
मास मछली पिआज नाही खाणा ।
चोरी जारी नाही करणी । - ગુરુ સાહેબ

हुक्म नाम न. ११३

हुक्मनामा बाबा बन्दा बहादुरजी

मोहर फारसी

देगो तेगो फतहि नुसरत बेदरिंग

याफत अज नानक गुरु गोबिन्दसिंह

१ ओ फते दरसनु

सिरी सचे साहिब जी दा हुक्म है सरबत खालसा जउनपुर का गुरु रखेगा । खालसे दी रहत रहणा भंग तंमाकू हफीम पोस्त दारु कोई नाही खाणा मास मछली पिआज, नाही खाणा चोरी जारी नाही करणी ।

અર્થાત્ માંસ, માછલી, પ્યાજ, નશીલા પદાર્થો, દારૂ વગેરેની મનાઈ કરી છે. બધાં શીખ ગુરુદ્વારાઓમાં લંગરમાં અવશ્યપણે શાકાહાર જ બને છે.

(૮) **બૌદ્ધ ધર્મ** - આ ધર્મના પંચશીલ, એટલે કે સાદાચારના પાંચ નિયમોમાં પ્રથમ અને મુખ્ય નિયમ - કોઈ પ્રાણીને દુઃખ ન આપવું - અહિંસા જ છે. **ધમ્મપદ** (પૃ. ૨૦)માં કહ્યું છે -

सव्वे तसन्ति दंडस्स, सव्वे भायन्ति मच्चुनो ।

अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये ॥

જેમ મને પીડા પસંદ નથી, તેમ અન્ય જીવોને પણ પીડા પસંદ નથી. જેમ મને મૃત્યુનો ડર સતાવે છે, તેમ સર્વ જીવોને પણ મૃત્યુનો ડર લાગે છે. આમ વિચારીને બધાં જીવોને પોતાની સમાન સમજવા. ન કોઈ જીવને મારવો, ન મરાવવો.

લંકાવતાર સૂત્રમાં કહ્યું છે કે બધાં જીવોને પોતાના સંતાનની જેવા સમજીને પ્રેમ કરવો જોઈએ. બુદ્ધિમાન વ્યક્તિએ સંકટના સમયે પણ માંસ ખાવું એ ઉચિત નથી. એ જ ભોજન ઉચિત છે, જેમાં માંસ કે લોહીનો અંશ ન હોય. ગૌતમ બુદ્ધે સ્પષ્ટ કહ્યું છે કે માંસ દુર્ગંધમય છે, અભક્ષ્ય છે અને ઘૃણાથી ભરેલું છે.

(૯) **યહૂદી ધર્મ** - આ ધર્મ પણ અહિંસાનો પક્ષ લે છે. આ ધર્મમાં તેવા લોકોને ત્યાજ્ય કહ્યાં છે, કે જેમના હાથો લોહીથી રંગાયેલા છે. બાઈબલમાં કહ્યું છે, 'તું મારા માટે હંમેશા એક પવિત્ર આત્મા હોઈશ. શરત એટલી જ કે તું કોઈનું માંસ નહીં ખાતો.' આ ધર્મ ન્યાય, દયા અને વિનમ્રતાનો ઉપદેશ આપે છે. જ્યારે માંસાહાર એ ત્રણેનો વિરોધી છે. માટે બાઈબલમાં ત્યાં સુધી કહ્યું છે કે-

Keep away from those who consume meat and intoxitants for they will be deprived of everything and will eventually become beggers.

દારૂ અને માંસનું સેવન કરનારાઓની સંગત કદી ન કરો. કારણ કે તેવા લોકો આપત્તિઓનો ભોગ બને છે અને ભીખ માંગતા થઈ જાય છે. જીસસ ખ્રિસ્તે એમ પણ કહ્યું છે કે -

I say unto all who desire to be my disciples, keep your hand away from bloodshed & let no flesh meat enter your mouth, for God

is just & bowntiful who ordaineth that man shall live by fruits, grains & seeds of the earth alone.

મારા શિષ્યો ! તમે લોહી વહેવડાવવાનું છોડી દો. અને પોતાના મુખમાં માંસ ન નાખો. ઈશ્વર ખૂબ દયાળુ છે. એમની આજ્ઞા છે કે મનુષ્યોએ પૃથ્વી પર ઉત્પન્ન થતા ફળ અને અન્નથી જીવન નિર્વાહ કરવો.

(૧૦) **ઈસ્લામ ધર્મ** - આ ધર્મમાં દયાનો ઘણો મહિમા છે. પૈગમ્બર મહમ્મદ સાહેબે પવિત્ર ગ્રંથ હદીસમાં કહ્યું છે -

इरहमु मनफिल अर्दे यरहम कुमुर्रहमानु 'દુનિયાવાળા પર તમે દયા કરો, કારણ કે ભગવાને તમારા પર ઘણી મહેરબાની કરી છે.' કુરાન શરીફમાં સૂરે બકરમાં હજના વર્ણનમાં લખ્યું છે - જાનવરોને મારવા અને ખેતીનો વિનાશ કરવો, એ જમીનમાં ખરાબી ફેલાવવા જેવું છે અને અલ્લાહ ખરાબીને પસંદ નથી કરતાં -

वैजा तवल्ला साआ फिर अरदे ल्युक सिद फीहा ।

व युह लिकल हरसा बन्नस्ल वल्लाहो ला युहिबुल फसादा ।

કુરાનમાં એમ પણ કહ્યું છે, કે જે બધા પર રહમ (દયા) કરે છે, તે રહીમ છે. માટે બધાં પ્રાણીઓ પર દયા કરો. ખુદા એક નાની કીડી કે રેતના નાના કણ જેટલો પણ જુલમ પણ કોઈની ઉપર ઇચ્છતા નથી. (નિસાઅની ૪૦મી આયાત)

લંડન મસ્જિદના ઈમામ અલ હાફિજ બશીર અહમદ મસેરીએ પોતાના પુસ્તક - 'ઈસ્લામિક કંસર્ન અબાઉટ એનીમલ્સ'માં મજબહના હિસાબે પશુઓ પર થતાં અત્યાચારો પર દુઃખ પ્રગટ કરતાં પાક કુરાન મજીદ અને હજરત મહમ્મદ સાહેબના વચનની સાક્ષી આપતાં કહ્યું છે, કે કોઈ પણ જીવ-જંતુને કષ્ટ આપવું, એમને શારીરિક કે માનસિક પીડા આપવી, કે ત્યાં સુધી કે પક્ષીઓને પણ પાંજરામાં પૂરવા, એ પણ ગુનો છે. ઈસ્લામ તો વૃક્ષોને કાપવાની પણ રજા આપતું નથી, એવું પણ તેમણે કહ્યું છે.

ઈમામ સાહેબે પોતાની પુસ્તકના પૃષ્ઠ ૧૮ પર હજરત મહમ્મદ સાહેબનું વચન આ રીતે કહ્યું છે - જો કોઈ મનુષ્ય નિર્દોષ ચકલીને પણ મારે છે, તો એણે ખુદાને તેનો જવાબ દેવો પડશે. અને જે કોઈ પક્ષી ઉપર પણ દયા કરીને તેને જીવન આપે છે, તો અલ્લાહ એના પર કયામતના દિવસે દયા કરશે.

ઈમામ સાહેબ પોતે પણ શાકાહારી છે અને બધાને શાકાહારી બનવા માટે પ્રેરણા કરે છે.

(૧૧) **જૈન ધર્મ** - આ ધર્મમાં સમસ્ત વિશ્વમાં વ્યાપ્ત જીવોનું છ પ્રકારોમાં વિભાજન કરવામાં આવ્યું છે. જેમાં મનુષ્યથી માંડીને કીડી અને પૃથ્વી, જળ વગેરે સુધીના જીવોની રક્ષાનો સૂક્ષ્મ ઉપદેશ આપવામાં આવ્યો છે. અહિંસા આ ધર્મનો મુખ્ય સિદ્ધાન્ત છે. કોઈને એવું વચન કહેવું, કે જેનાથી એ પીડિત થાય, કે કોઈનું ખરાબ વિચારવું, એને પણ આ ધર્મમાં હિંસા કહી છે. આ ધર્મમાં પશુઓને બાંધવા કે વધારે ભાર લાદવાને પણ પાપ માનવામાં આવે છે. ત્યાં માંસાહારનો તો સવાલ જ ઊભો નથી થતો. **યોગશાસ્ત્ર**માં કહ્યું છે -

नरकाध्वनि पाथेयं कोऽश्नीयात् पिशितं सुधीः ?

માંસ તો નરકના માર્ગનું પાથેય છે, કયો ડાહ્યો માણસ એને ખાવા ઇચ્છે ?

આ રીતે આપણે જોઈ શકીએ છીએ, કે બધાં ધર્મોએ જીવદયાનો ઉપદેશ આપ્યો છે અને માંસાહારનો નિષેધ કર્યો છે. જેઓ પોતાનું કલ્યાણ ઇચ્છતાં હોય, તેમનું કર્તવ્ય છે, કે આ ઉપદેશનું દૃઢતાપૂર્વક અનુસરણ કરે.

(વિનંતિ - આ લેખનો પેમ્પ્લેટ / પોસ્ટર રૂપે પ્રચાર કરીને જીવદયાનો અણમોલ લાભ મેળવવા જેવો છે.)

●●●

શું ખાવું ?

વેજ કે નોનવેજ

વૈજ્ઞાનિક દૃષ્ટિથી ભોજન વિચાર

વિજ્ઞાન કહે છે કે કોઈ પણ વ્યક્તિએ પોતાને અનુરૂપ ભોજનની પસંદગી કરવા માટે પોતાની પ્રકૃતિ અને શરીરરચનાનો વિચાર કરવો જોઈએ. મનુષ્યની બાબતમાં વિચાર કરીએ, તો એના દાંત માંસાહારી પ્રાણીઓના દાંત સાથે બિલ્કુલ મળતા નથી. મનુષ્યના વચ્ચેના બે દાંત બાકીના દાંતો સાથે એક જ હારમાં હોય છે. પણ માંસાહારી જીવોને જે આગળના બે મોટા દાંત હોય છે, તે બીજા દાંતો કરતા ધારદાર અને આગળની તરફ નીકળેલા હોય છે. એમનો પંજો અને નખો 'તેજ' હોય છે. એમના જડબા માત્ર ઉપર-નીચે ચાલે છે. તેઓ પોતાના આહારને ગળી જાય છે. એમની જીભ ખરબચડી હોય છે. તેઓ જીભથી પાણી પીવે છે. એમના આંતરડાં નાના હોય છે. એમનું હૃદય અને કિડની બીજાની અપેક્ષાએ મોટા હોય છે. એમની લાળમાં હાઈડ્રોક્લોરિક અમ્લ હોય છે. મનુષ્યની શરીરરચના આનાથી બિલ્કુલ અલગ છે. એમની શરીરરચના શાકાહારી પ્રાણીઓથી મળે છે. શાકાહારી પ્રાણીઓના દાંત અને નખ ધારદાર નથી હોતા. એમના જડબાં બધી દિશાઓમાં ખુલે છે. તેઓ પોતાના આહારને ચાવે છે. તેમની જીભ ચીકણી અને સ્નિગ્ધ હોય છે. તેઓ હોઠથી પાણી પીવે છે. તેમના આંતરડાં મોટા હોય છે. એમનું હૃદય અને કિડની નાના હોય છે. એમની લાળમાં ક્ષાર (અલ્કેલાઈન) હોય છે.

પ્રકૃતિએ સ્વયં મનુષ્યને શાકાહારી અસ્મિતા આપી છે. મનુષ્યના શરીરની રચના પણ તદનુરૂપ કરી છે. જો મનુષ્ય પોતાની પ્રકૃતિ અને શરીર રચનાથી વિપરીત ભોજન કરે, તો એના શરીર પર દુષ્પ્રભાવ પડે જ. તો ચાલો, હવે જોઈએ કે વિશ્વના પ્રતિષ્ઠિત વિજ્ઞાની અને ડૉક્ટર પોતાના સંશોધન અને અનુભવથી શું કહે છે ?

● **ડૉ. કિંગ્સ્ફોર્ડ અને હેગ**-માંસ ખાવાથી દાંતોને હાનિ પહોંચે છે, સંધિવાત થઈ

જાય છે. એટલું જ નહીં, માંસાહારથી ક્રોધ ઉત્પન્ન થાય છે, જે અનેક રોગોનું કારણ છે.

- **ડૉ. જોશિયા આલ્ડ ફિલ્ડ** (D.C.M.A., M.R.C. L.R.C.P.) સિનિયર ફિઝિસીયન મારગેરેટ હૉસ્પિટલ બ્રામલે) - માંસ અપ્રાકૃતિક ભોજન છે, તેથી એ શરીરમાં અનેક પ્રકારના ઉપદ્રવ કરે છે. માંસાહારી લોકો કેન્સર, ક્ષય, જ્વર, પેટના કૃમિ વગેરે ભયાનક રોગોથી વધુ પીડિત થાય છે. એમાં કોઈ આશ્ચર્ય નથી, કે માંસાહાર એ ભયાનક રોગોના કારણોમાંથી એક કારણ છે, જે ૧૦૦માંથી ૯૯ ને સતાવે છે.
- **સિલપેસ્ટર, ગ્રેહમ, ઓ.એસ. ફૌલ્ડર, જે. એફ ન્યૂટન, જે. સ્મિથ, ડૉ. ઓ.એ.અલકર હિડકલેન્ડ, ચીન, લેમ્બ વકાન, ટ્રજી, ઓલાસ, પેમ્બરટર્ન, હાઈટેલા** વગેરે કેટલાય ડૉક્ટરો, કુશલ ચિકિત્સકોએ અનેક પ્રમાણો દ્વારા સિદ્ધ કર્યું છે, કે માંસ-માંછલી ખાવાથી શરીર અનેક રોગોનું ઘર બની જાય છે. જઠરના રોગો, યક્ષ્મા, રાજયક્ષ્મા, મૃગી, પાદશોથ, વાતરોગ, સંધિવાત, નાસૂર વગેરે રોગો ઉત્પન્ન થાય છે. તેમણે પ્રત્યક્ષ જોયું છે કે માંસ-માંછલી ખાવાનું છોડી દેવાથી મનુષ્યના ઉત્કટ રોગ મૂળમાંથી નષ્ટ થઈ જાય છે અને તેઓ હૃષ્ટ-પુષ્ટ થઈ જાય છે.
- **ડૉ. એસ ગ્રહેમન, ડબ્લ્યૂ એસ. ફૂલર, ડૉ. પાર્મલી લેમ્બ, ક્યાનિસ્ટર બેલર, જે. પોર્ટર, એ. જે. નાઈટ અને જે. સ્મિથ** વગેરે ડૉક્ટર પોતે માંસ ખાવાનું છોડી દેવાથી યક્ષ્મા, અતિસાર, અજીર્ણતા અને મૃગી રોગોથી મુક્ત થઈને સબળ અને પરિશ્રમી થયા છે. આ જ રીતે તેમણે અન્ય રોગીઓને માંસ ખાવાનું છોડાવીને સારા તંદુરસ્ત કર્યા છે અને કેટલાય ડૉક્ટરોએ પોતાના પરિવારનો માંસાહાર છોડાવ્યો છે.
- **ડૉ. કેલોગ**-વિજ્ઞાનની દષ્ટિએ તપાસ કરવા પર સિદ્ધ થયું છે, કે આ વાત સાવ ખોટી છે, કે ગાયનું માંસ શક્તિ આપે છે. વાસ્તવમાં માંસાહાર નિર્બળતાનો શિકાર બનાવે છે. અને એનાથી જે નાઇટ્રોજીનસ પદાર્થ ઉત્પન્ન થાય છે, તે સ્નાયુજાળ પર ઝેરનું કામ કરે છે.
- **ડૉ. ડૌગ્લાસ મેકડોનાલ્ડ** - માંસાહારથી યુરિક એસિડની વૃદ્ધિ થાય છે, જેનાથી નાસૂરનું દર્દ લાગૂ થાય છે.

- **ડૉ. વિલિયમ્સ રોબર્ટ** (મિડલે સેક્સ કેન્સર હોસ્પિટલ) - માંસાહારથી આ રોગની વૃદ્ધિ થાય છે, એવું આંકડાંઓથી સાબિત થાય છે.
- **ડૉ. સર જેમ્બ સોયર** (M.D.F.R.C.P.) મારા ઊંડા અનુભવ પછી આ સિદ્ધ થયું છે કે માંસાહારથી ઇંગ્લેંડમાં નાસૂરનું દર્દ ફેલાયું છે.
- **ડૉ. હેગ**-ધાન્ય, ફળ અને શાકના આહારથી રોગ થતો જ નથી.
- **ડૉ. લીઓનાર્ડ વિલિયમ્સ** - ૮૫% માંસાહારી પ્રજા ગળાની બીમારીઓ અને આંતરડાના રોગોથી દુ:ખી થઈ રહી છે. જેનું મૂળ કારણ તેમનો માંસાહાર જ છે.
- **પ્રોફેસર કીથ** - માંસાહારથી દાંત, ગળા અને નાકના દર્દ ઉત્પન્ન થાય છે.
- **ડૉ. પોલ કાર્ટન** - માંસનો ખોરાક ડીસ્પેસિયા એપેન્ડી સાઈટીસ વગેરે રોગોને ઉત્પન્ન કરવામાં મહત્ત્વનો ભાગ ભજવે છે. ટાઈપોર્ડ સંગ્રહણી વગેરેની તકલીફોને વધારે છે અને ક્ષય, નાસૂર જેવા પ્રાણઘાતક રોગોના જીવાણુઓને પ્રવેશ કરવા માટે સહાયક થાય છે.
- **ડૉ. કોઝન્સબેલી** - પશુ-પક્ષીઓના માંસમાં એપેન્ડી સાઈટીસના જંતુઓ હોવાથી શરીરમાં રહેલા માંસને આ રોગનો ચેપ લાગે છે.
- **ડૉ. પોલ કાર્ટન** - માંસનો ખોરાક ટાઇફોડ જેવા રોગના ઝેરી જંતુઓ માટે ખૂબ જ અનુકૂળ છે.
- **ડૉ. એચ. એસ. બ્રુઅર** - માંસ ખાવાવાળાઓની નસો અને ઘોરી નસો ભરાઈ જાય છે અને પાતળી પડી જાય છે. માટે તેમને ઓછો કે વધુ તાવ આવતો રહે છે.
- **ડૉ. બોન નુરડન** - માંસાહારથી લિવર, કિડની અને તેવા જ બીજા ભાગોને વધારે બોજો થાય છે. અને તેનાથી સંધિવાત અને લિવર તથા કિડની સંબંધી અન્યાન્ય પીડા ઉત્પન્ન થાય છે.
- **ડૉ. પાર્કર સબ** - માંસ ખાવાથી ગાઇડ, સંધિવાત અને કિડનીની પીડા ઉત્પન્ન થાય છે.
- **ડૉ. સવેજે** - પાગલપણાની બીમારી માંસભક્ષી લોકોમાં જ વિશેષથી જોવામાં આવે છે.

- **ડૉ. ડેવિડ પોટર્ટન** - માંસને આંતરડાંઓમાંથી પસાર થતા ૩ કે ૪ દિવસ લાગી શકે છે, જ્યારે તંતુસમૃદ્ધ (ફાયબર્સ) શાકાહાર ૨૪ કલાકમાં જ આંતરડાંઓની યાત્રાને પૂરી કરી લે છે. માટે શાકાહારી વ્યક્તિ પશ્ચિમ જગતની તમામ વિકારમૂલક (ડીજેનરેટિવ્હ) બીમારીઓથી બચી જાય છે.
- **અમેરિકન ફૂડ એન્ડ ન્યૂટ્રીશન બોર્ડ - નેશનલ રિસર્ચ કૌંસિલ** - અધિકાંશ પોષણ વિજ્ઞાની આ તથ્યથી સહમત છે કે યથોચિત શાકાહાર સ્વયં સંપૂર્ણ અને પર્યાપ્ત આહાર છે. દુનિયાના પ્રાયઃ બધાં જ દેશોમાં શુદ્ધ શાકાહારીઓએ પોતાનું સ્વાસ્થ્ય ઉત્તમ રીતે જાળવી રાખ્યું છે. જે આ વાતનું પ્રતિક છે, કે સંતુલિત આહાર અમૃત જેવો છે.
- **સ્ટેટ યુનિવર્સિટી ઑફ ન્યુયોર્ક, બફૈલો** - અમેરિકામાં દર વર્ષે ૪૭૦૦૦થી વધુ બાળકો એવા જન્મે છે, જેમના માતા-પિતા માંસાહારી હોવાથી તેમને ઘણી બીમારીઓ જન્મથી જ હોય છે. અને તે બાળકો મોટા થયા પછી પણ પૂર્ણપણે સ્વસ્થ થઈ શકતાં નથી.
- **ડૉ. માઈકલ એસ. બ્રાઉન અને ડૉ. જોસેફ એલ. ગોલ્ડસ્ટીન** (અમેરિકા, નોબલ પુરસ્કાર વિજેતા) હ્રદયરોગથી બચવા માટે કોલેસ્ટેરોલને જામ થતા રોકવું ખૂબ જ જરૂરી છે. આ તત્ત્વ વનસ્પતિમાં નહીવત્ હોય છે. માંસ, ઈંડા અને પશુઓથી પ્રાપ્ત થતી ચરબીમાં ઘણા પ્રમાણમાં હોય છે. જે વ્યક્તિ માંસ કે ઈંડા ખાય છે, એમના શરીરમાં રિસ્પટરોંની સંખ્યા ઓછી થઈ જાય છે, જેનાથી લોહીમાં કોલેસ્ટેરોલનું પ્રમાણ વધી જાય છે. આનાથી હ્રદયરોગ, કિડનીના રોગ અને પથરી જેવી બીમારીઓ વધે છે.
- **ડૉ. એમ. રૉક.** (બ્રિટન) - શાકાહારીઓમાં સંક્રામક અને ઘાતક બીમારીઓ માંસાહારીઓની અપેક્ષાએ ઓછી હોય છે. તેઓ માંસાહારીઓની અપેક્ષાએ વધુ સ્વસ્થ, વધુ સ્ફૂર્તિવાળા, શાંતપ્રકૃતિવાળા અને ચિંતનશીલ હોય છે. (એક સર્વેક્ષણ અભિયાનનું પરિણામ.)
- **ડૉ. વિલિયમ સી. રોબટ્ર્સ** - અમેરિકામાં માંસાહારી લોકોમાં હ્રદયરોગના દર્દીઓ વધારે છે. તેમની તુલનામાં શાકાહારી લોકોમાં હ્રદયરોગના દર્દીઓ ઓછા હોય છે.
- **હેલ્થ એજ્યુકેશન કાઉંસિલ** - વિષાક્ત ભોજન (Food poisoning)થી થતાં

૯૦% મૃત્યુઓનું કારણ માંસાહાર છે.

- **પ્રોફેસર એગ્નરબર્ગ** (જર્મની) - ઈંડું ૫૧.૮૩% કફ ઉત્પન્ન કરે છે, જે શરીરના પોષક તત્ત્વોને અસંતુલિત કરી દે છે.
- **ડૉ. ઈ.બી. એમારી** (અમેરિકા) તથા **ડૉ. ઈન્હા** (ઇંગ્લેંડ) - ઈડાં મનુષ્ય માટે ઝેર છે. (વિશ્વ વિખ્યાત પુસ્તકો - 'પોષણનું અભિનવ વિજ્ઞાન' અને 'રોગીઓની પ્રકૃતિ'માં)
- **ડૉ. આર. જે વિલિયમ** (ઇંગ્લેંડ) ઈંડાં ખાવાવાળાને હૃદયરોગ, એકજીમા, લકવા જેવા ભયાનક રોગોના ભોગ બનવું પડે છે.
- **ડૉ. નિતીન મહેતા** (યુ.કે.) - દર વર્ષે લગભગ ૫૦ લાખ વ્યક્તિ Salmonella થી પ્રભાવિત થાય છે. N.H.S.ના અનુસારે ચિકન અને ઈંડાથી થતા ફૂડ પોઈઝનિંગનો ભોગ બનેલા રોગીઓનો ઉપચાર કરવામાં ૨૦ લાખ ડોલર ખર્ચ થાય છે.
- ગોમાંસ (Beaf)થી થતી એક મગજની બીમારી છે, જેનું નામ છે creutzfelt Jacob's disease,
- ઓસ્ટ્રેલિયા, જયાં સર્વાધિક માંસભોજન ખાવામાં આવે છે, ત્યાં આંતરડાંઓનું કેન્સર સૌથી વધુ છે.
- નસોની અંદરની દીવાલો પર કોલેસ્ટેરોલનું જામી જવું, એ હૃદયરોગ અને હાઈ બ્લડપ્રેશરનું મુખ્ય કારણ છે. કોલેસ્ટેરોલનો સર્વાધિક મુખ્ય સ્રોત છે ઈંડાં.
- ઈંડા, માંસ ખાવાથી પેચિસ, મંદાગ્નિ વગેરે રોગો ઘર કરી જાય છે. આમાશય નબળું પડી જાય છે અને આંતરડાઓ સડી જાય છે. ઈંડા, માંસ ખાવાથી શરીરની વિષાવરોધી શક્તિ નષ્ટ થાય છે અને શરીર સાધારણ રોગનો પણ પ્રતિકાર કરી શકતું નથી. બુદ્ધિ અને સ્મરણશક્તિ નબળી પડે છે. વિકાસ મંદ થઈ જાય છે.
- શાકાહાર ચામડીની રક્ષા કરે છે. માંસ, ઈંડા અને દારૂના સેવનથી ચામડીના રોગો વધે છે. ચામડીમાં બળતરા થાય તો રોગો મોટા ભાગે માંસાહારીઓમાં જ જોવા મળે છે.

- માઈગ્રેન, ઈન્ફેક્શનથી થતાં રોગો, સ્ત્રીઓના માસિકધર્મ સંબંધી રોગો પણ માંસાહારીઓમાં જ વધુ જોવા મળે છે.

તો આ છે દુનિયાભરના ડૉક્ટરો, વૈજ્ઞાનિકો અને આરોગ્ય નિષ્ણાતોના અભિપ્રાયો અને અનેક સર્વેક્ષણોના પરિણામો, જેઓ વાસ્તવમાં આપણા પ્રાચીન શાસ્ત્રોનું જ સમર્થ કરે છે. આપણા શાસ્ત્રો પણ આ જ વાત કરે છે હિંસાથી દુઃખ મળે છે અને અહિંસાથી સુખ મળે છે. **યોગશાસ્ત્ર**માં કહ્યું છે -

दीर्घमायुः परं रूप - मारोग्यं श्लाघनीयता ।

अहिंसायाः फलं सर्वं, किमन्यत् कामदैव सा ।

દીર્ઘ આયુષ્ય, અત્યંત સુંદર રૂપ, આરોગ્ય અને પ્રશંસનીતા - આ બધું અહિંસાનું ફળ છે. ખરેખર, અહિંસાથી બધી જ મનોકામનાઓ પૂરી થાય છે.

દુનિયામાં કેટલાય લોકો એવા છે, જેઓ જીવદયાની દૃષ્ટિએ માંસાહારનો ત્યાગ કરે છે. કેટલાય લોકો એવા છે, જેઓ આરોગ્યની દૃષ્ટિએ માંસાહારનો ત્યાગ કરે છે. બાકીના લોકો અજ્ઞાનને કારણે માંસાહાર કરે છે, અને ઉપરોક્ત રોગોના ભોગ બનીને દુઃખી થઈ જાય છે. આવા લોકો પોતે જ માંસાહાર-ત્યાગના મૂક ઉપદેશક છે. આ રીતે આપણે જોઈ શકીએ છીએ કે આખું વિશ્વ માંસાહારના ત્યાગના પક્ષે જ રહેલું છે.

(આ લેખનો પોસ્ટર, પેમ્પ્લેટ વગેરેના રૂપે જાહેર સ્થાનો, હૉસ્પિટલ, મેડિકલ સ્ટોરો વગેરેમાં પ્રચાર કરવા વિનંતિ.)

●●●

તારું શાસન મારો શ્વાસ

ગુરુદેવે પુસ્તક વાંચવા આપ્યું. સિંહપુરુષ. ડૉ. શરદ ઠાકરની કલમે 'વીર સાવરકર' ઉપર ઉપન્યાસ. વાંચતો ગયો ને રડતો ગયો. દિવસે વાંચતા વાંચતા રડ્યો. રાતે અનાયાસપણે આવતી એની સ્મૃતિઓથી રડ્યો. માત્ર રડ્યો નથી. દાઝ્યો પણ છું, સળગ્યો પણ છું, ને મંથનના માર્ગે આગળ વધતાં વધતાં એ પ્રદેશમાં પહોંચ્યો છું, જ્યાં મારા અશ્રુઓના ગુણાકાર થયાં છે, ને પ્રયાસ કરવા છતાં હીબકાઓનાં અવાજને હું રોકી શક્યો નથી.

ઉપન્યાસના અંતે લેખકે હૈયાવરાળ કાઢી છે કે 'શું વીરસાવરકરનું બલિદાન, સમર્પણ, સાધના, શૌર્ય અને સીમાતીત સહનશીલતા એ માટે હતી કે ભ્રષ્ટ નેતાઓ લાંચ-કૌંભાડોમાંથી ઊંચા ન આવે ?' એક યુવાન બેરિસ્ટરે જેના માટે પોતાનો પરિવાર, પૈસો, શરીર, કારકિર્દી અને સમગ્ર જીવન હોમી દીધું, એ દેશે એને શું આપ્યું ? સમર્પણનું એક શ્રેષ્ઠ ઉદાહરણ સાવરકર ચોક્કસ હતાં. પણ આધ્યાત્મિક પરિપ્રેક્ષ્યમાં કે તાત્ત્વિક પરિપ્રેક્ષ્યમાં સમર્પણનું સ્થાન શું હોવું જોઈએ ?

મંથનના મિનારેથી દૃષ્ટિપાત કરતાં લાગે છે કે મારા માટે માતૃભૂમિ કે માતા જે કહો એ 'મહાવીર' છે. એ મહાવીર, જેમણે વીશ સાગરોપમો પૂર્વે મારા હિતની પરાકાષ્ઠાની ભાવના ભાવી હતી, એ મહાવીર, જેમને અનંત કાળ પહેલા ય પરાર્થનું વ્યસન હતું, એ મહાવીર, જેમના આ વ્યસને મને અસંખ્ય કે અનંત વાર લાભાન્વિત કર્યો છે. એ મહાવીર, જેમણે નંદન રાજકુમારમાંથી નંદન રાજર્ષિ બનીને એક લાખ વર્ષ સુધી માસખમણના પારણે માસખમણ કર્યા, એ મહાવીર જેમના ૧૧,૮૦,૬૪૫ જેટલા એ અધધધ માસખમણોની પાછળ મારા કલ્યાણનો ઉદ્દેશ્ય હતો. એ મહાવીર, જેમણે મને તારવા છત્રિકા નગરીના સામ્રાજ્યને લાત મારીને વન-વગડાનાં કષ્ટોને વધાવી લીધાં હતા, એ મહાવીર, જેમણે રાજવી ભોગોને ઉચિત કોમળ કનકવર્ણી કાયાને કઠોર-ઉગ્ર-ઘોર તપ દ્વારા હાડપિંજરમાત્ર અને કોલસાસમાન બનાવી દીધી. એ મહાવીર, જે પ્રાણત - 'કલ્પ'ના કલ્પનાતીત દિવ્યસુખોના પ્રલોભનો વચ્ચે ય નિર્લેપભાવે મને તારવાના અવસરની પ્રતીક્ષા કરતાં રહ્યા એ મહાવીર, જેમણે પોતાના એક-એક કલ્યાણકના અવસરે મને શાતા આપી છે, કદાચ, હું નરકમાં હતો, તો પણ. એ મહાવીર, જેમણે મને ચોર્યાશી લાખ

યોનિઓના ભયાનક ભ્રમણથી બચાવવા ત્રીશ વર્ષની યુવાન વયે રાજ્યસુખને ધૂળની જેમ ખંખેરીને સાધનાનો પંથ પકડ્યો હતો, એ મહાવીર, જેમણે પરીષહો અને ઉપસર્ગોને સામી છાતીએ વધાવ્યા, જેનો ઉદ્દેશ્ય વિશ્વકલ્યાણનો હતો, વિશ્વ એટલે ? નિર્જીવવસ્તુઓનો સમૂહ નહીં, પણ જીવજગત, જેનો હું એક અંશ છું, કથંચિત્ જેનાથી હું અનન્ય છું. શૂલપાણિની પાશવી-રાત્રિ હોય કે સંગમની એ કાળ-રાત્રિ હોય, પણ મહાવીર એ મહાવીર જ રહ્યા છે, એમનું શરીર દાઝ્યું છે, છોલાયું છે, કોતરાયું છે, ઘવાયું છે, પછડાયું છે. પટકાયું છે, ચાલણી જેવું થયું છે, પણ એમની કરુણા એવી ને એવી અકબંધ રહી છે, અસંખ્યકાળથી નિરંતર વહેતી ને વહેતી એની ધારાં...નથી હું એમાંથી બાકાત થયો, નથી તો એ પાપીઓ પણ બાકાત થયાં.

વિશ્વોદ્ધારનો ભેખ લેનારા બીજા ય હશે, પણ તેમનું ક્ષેત્ર એક નાનું કૂંડાળું બની ગયું હશે. મહાવીરે વિશ્વોદ્ધારનો મહત્તમસાફલ્યયુક્ત માર્ગ જોયો, એ વિકટ માર્ગે મહાભિનિષ્ક્રમણ કર્યું. ઘોરાતિઘોર સાધના કરીને સર્વજ્ઞ-વીતરાગ પદની પ્રાપ્તિ કરી. કેવળજ્ઞાનના પરમ પ્રકાશમાં મોક્ષમાર્ગ જોયો અને તેનો યથાર્થ ઉપદેશ આપ્યો. એક એવી સંસ્થાની સ્થાપના કરી, જે અવિચ્છિન્નપણે હજારો વર્ષ સુધી ચાલતી રહે. એ સંસ્થાના સભ્ય બનવા માત્રથી વધુમાં વધુ સાતથી આઠ ભવમાં અનાદિની આ દુઃખદ યાત્રા પર સુખદ પૂર્ણવિરામ આવી જાય. વિશ્વોદ્ધારનું આ પ્લેટફોર્મ શી રીતે બન્યું છે, એ પૂર્ણપણે તો એ મહાવીર જાણે છે. રિવાજ કે કર્તવ્ય ખાતર કલ્પસૂત્રના પાના વાંચી કે સાંભળી જવાથી વધુમાં વધુ એનો આછો ખ્યાલ આવી શકે છે. એ પ્લેટફોર્મમાં ઇંટની જગ્યાએ પ્રભુના અશ્રુબિંદુ, ના, અશ્રુસિંધુ વપરાયા છે, એનો કણ કણ મહાવીરની મહાનતા ને મહાવીરતાને આભારી છે. એક દૃષ્ટિએ એ પ્લોટફોર્મ ખુદ મહાવીર જ છે વિશ્વોદ્ધારનો પૂર્ણ પ્રબંધ એ મહાવીરે કરી દીધો. આવો, સભ્ય બનો, મુક્ત થાઓ, શાશ્વત સુખના સ્વામી બનો. વિશ્વ ન આવે, એમાં એની કમનસીબી છે. મહાવીરના અજોડ ઉપકારની અસ્મિતાને એનાથી કોઈ આંચ આવી શકે તેમ નથી. સૂર્ય વિશ્વપ્રકાશક છે જ. જેને અંધારું જ વહાલું હોય, જેને બારી ખોલવી જ ન હોય, એના ઘરમાં અંધારું હોય, તો ય સૂર્યની વિશ્વપ્રકાશકતાને કોઈ આંચ આવતી નથી. મહાવીર વિશ્વોદ્ધારક હતાં જ, અને છે.

પણ વાત તો મારી કરવી છે. વિશ્વ-વિશ્વની વાતોમાં મારો ને મહાવીરનો

સંબંધ કેમ ભૂલી શકાય ? મહાવીરની એ પરમ પાવન સંસ્થા દુષમકાળની કાળરાત્રિના પરીષહો-ઉપસર્ગોને વટાવતી વટાવતી સેંકડો-હજારો સાલ સુધી આગળ વધી. એના ઉત્તરાધિકારીઓ, એના મંત્રીઓ, એના સભ્યો...બધું જ અદ્‌ભુત... અતુલ્ય એક-એક ઉપર એક-એક ગ્રંથ પણ ઓછો પડે...આજ સુધી આ પરંપરા ચાલી આવી. એક પરમ પાવન પળે મારા મહાવીરે જે સ્વપ્ન મારા માટે સેવેલું, એ મને ખુદને ફળ્યું. મને એની એ પરમ પાવન સંસ્થાનું સભ્યપદ મળી ગયું. મારા દેદાર પલટાઈ ગયાં, મારી દિશા બદલાઈ ગઈ, મારું ભવિષ્ય બદલાઈ ગયું. મહાવીરની અનરાધાર કરુણાએ મને અપ્લાવિત કરી દીધો. મહાવીરના અમુક ઉત્તરાધિકારીઓએ મારું હજી વધુ સંસ્કરણ કર્યું. મારી યોગ્યતા વધારી, ને મને પ્રમોશન આપ્યું. મોક્ષમાર્ગ પર મારી ગતિના ગુણાકાર થઈ ગયાં. હું ન્યાલ થઈ ગયો, હું ધન્ય થઈ ગયો, મહાવીર ! તે મને આ શું આપી દીધું ? આખા વિશ્વની સમૃદ્ધિ પણ જેની સમક્ષ ધૂળ ને ઢેફાં તુલ્ય છે, એ અદ્‌ભુત વૈભવ...દેવોને ય ઈર્ષ્યા આવે એવો અનહદ આનંદ...મારા મહાવીર ! ન્યાલ...ખરેખર ન્યાલ કરી દીધો તે મને, હવે બસ, હાથવેંતમાં મોક્ષ, હવે સંસારને જલાંજલિ હવે કદી નરકની ભટ્ટીમાં કરુણ ચીસો નહીં પાડવી પડે, હવે કદી નિગોદના બંદીખાને નહીં પૂરાવું પડે.

હા, કદાચ મારી કોઈ દુર્બુદ્ધિ...અવળચંડાઈથી તારી સંસ્થાનું સભ્ય પદ છોડી દઉં, તો એ મારો દોષ છે. એમાં તારો અસીમ-અનંત ઉપકાર રદબાતલ નથી થતો. તારી કરુણા ને તારી સંસ્થાનું ગૌરવ ઓછું નથી થતું, તે તો મને સર્વસ્વ આપ્યું છે...એક અપેક્ષાએ મોક્ષ જ આપ્યો છે.

સવાલોનો સવાલ એ છે કે તારા પ્રત્યે મારી સંવેદના ને કૃતજ્ઞતા કેટલી ? ને કેવી ?

દશ-પંદર વર્ષ પહેલા જે ભૂમિમાં જન્મ થયો હોય, એ ભૂમિ સાથેના સંબંધનું ઔચિત્ય જો વ્યવહારિક / લૌકિક રીતે એના ખાતર તન-મન-ધન-જીવન-પરિવાર-સુખ બધાનું બલિદાન આપવાથી સચવાતું હોય, એ ભૂમિ 'માતૃભૂમિ' કહેવાતી હોય, તો મહાવીર ! તને મારે શું સંબોધન કરવું ? અને તારી સાથેનું ઔચિત્ય શી રીતે સચવાઈ શકે ?

તારી સાથેનો સંબંધ તો હજારો-લાખો-કરોડો કે અબજો વર્ષ નહીં, પણ અસંખ્ય અસંખ્ય અસંખ્ય વર્ષ પુરાણો છે...મહાવીર ! તું એ અનંત અનંત

તીર્થંકરોનો પ્રતિનિધિ કે પ્રતિક છે, જેમણે અનંતાનંત કાળચક્રો પૂર્વેથી ય મારા પર કરુણા વરસાવી છે. મારા ઉદ્ધાર માટે મને દુઃખોથી મુક્ત કરવા માટે કઠોર પુરુષાર્થ કર્યો છે. મહાવીર ! તું એ સિદ્ધ ભગવંતનો પ્રતિનિધિ છે જેમણે મને અવ્યવહારરાશિની અનાદિની નિગોદમાંથી મુક્તિ અપાવી છે.

મારા નાથ ! ઘણું કહેવાનું રહી જતું હશે, જે તને જ્ઞાનપ્રકાશમાં કરામલક જેટલું સ્પષ્ટ ભાસતું હશે. બસ, હવે એટલું કહે, તારા અનંત-અનંત-અનંત ઉપકારોથી ઉપકૃત-મારું ઔચિત્ય શું છે ?

મારા નાથ ! તું કહે તો આ પહેલા માળેથી કૂદકો લગાવી દઉં, તારા નામે મારો જાન આપી દઉં, પણ એવું તો તું ક્યાં કહે છે ? ને તું જે કહે છે, એ મને ક્યાં ખબર નથી ? તારું સાંભળીને તો હું આ સંસ્થાનો સભ્ય બન્યો છું. ને સભ્ય બન્યા પછી મહત્તમ કાર્ય તો તને સાંભળવાનું જ કર્યું છે.

તો બસ નાથ ! હવે તારી આજ્ઞા એ જ મારું જીવન, તારું શાસન એ જ મારો શ્વાસ, ના, બીજો કોઈ ઉદ્દેશ્ય નહીં, બહાના નહીં, સમાધાન (કોમ્પ્રોમાઇઝ) નહીં, એક મુદ્દાનો કાર્યક્રમ...તારું શાસન, મારો શ્વાસ.

●●●

Come On, It's evening

- પ.પૂ. આ. શ્રીકલ્યાણબોધિસૂરિજી

અંધારું ઘેરાવા લાગે, એ દિવસની સાંજ છે.

પાણી ઓસરવા લાગે, એ દરિયાની સાંજ છે.

યૌવન કરમાવા લાગે, એ જીવનની સાંજ છે.

સાંભળનારા બહેરા થવા લાગે, એ આદેયતાની સાંજ છે.

કમાણી ઘટવા લાગે, એ સંપત્તિની સાંજ છે.

તંદુરસ્તી ઓગળવા લાગે, એ આરોગ્યની સાંજ છે.

સ્વાર્થ વધવા લાગે, એ મિત્રતાની સાંજ છે.

જો સાંજ પડી જ ગઈ છે, તો એને સ્વીકારી લેવા કરતાં વધુ સારો કોઈ વિકલ્પ જ નથી. હું લખવા બેઠો છું. ઘણું લખી નાખવું છે. સ્ફુરણાઓ થઈ રહી છે. હાથ ઝપાટાબંધ ચાલી રહ્યો છે. પણ કુદરતના ક્રમને મારી ધારણાનું કોઈ બંધન પણ નથી, ને પરવા પણ નથી. સાંજ પડી ગઈ છે. પ્રકાશ ઓસરી રહ્યો છે હું મારી ધારણામાં છું, પણ વાતાવરણ આખું ય બદલાઈ ગયું છે. લખાણનું દૃશ્ય ઝાંખુ થઈ રહ્યું છે. હાથ ચાલી રહ્યો છે ને થોડી જ વારમાં અંધકારનું સામ્રાજ્ય છવાઈ જાય છે.

મારે તો ઘણું ઘણું લખવું હતું. તો હવે શું કરવું ? હજી ધૃષ્ટતા કરીને લખવું ? કે અંધકાર સાથે લડવું ? કે સૂર્યને ગોતવા જવાની મૂર્ખતા કરવી ? શ્રેષ્ઠ વિકલ્પ છે - સાંજનો સ્વીકાર. જે છે, એ છે. સવાર હતી ત્યારે જેમ સવારનું કાર્ય કર્યું, એમ સાંજે સાંજનું કાર્ય કરવામાં જ શાણપણ છે. કારણ કે સાંજે કદી સવાર પડતી જ નથી. સાંજે સવારનું કાર્ય કરવાના દુરાગ્રહમાં ધૃષ્ટતા છે, સંક્લેશ છે, નિષ્ફળતા છે ને મૂર્ખતા છે. પરમ પાવન શ્રીદશવૈકાલિક સૂત્રનું સુવર્ણવચન છે - **काले कालं समायरे** - જે કાળ છે, એ કાળને ઉચિત આચરણ કરવું.

સાંજ પડશે જ એવો વિશ્વાસ અને સાંજને સમજવાની + સ્વીકારવાની ક્ષમતા એ સમાધિનો રાજમાર્ગ છે, ને એક માત્ર માર્ગ છે. જે આ માર્ગ પર છે, એ દરેક વિષમ પરિસ્થિતિમાં ય સુખ-શાંતિ-સમાધિને અકબંધ રાખી શકે છે, કારણ કે એ એક જ વાક્યથી એની જાતને સંભાળી લે છે - come on, It's evening.

ભલે અહીં જ કર્યા' તા છબછબિયાં.
પણ ત્યારે ભરતી હતી,
સાનમાં સમજી જા હવે,
રેતીમાં તપવું ન હોય તો.

असकृदुन्मिष्य निमिषन्ति सिन्धूर्मिवत् चेतनाचेतनाः सर्वभावाः -
- शांतसुधारस

●●●

(નમ્ર વિનંતિ - આ લખાણ વાંચી સ્વજીવનમાં આદરવા પ્રયત્ન કરી શકો, તો સારું છે, પણ આ વિધાનો દ્વારા અન્યને માપવા જતાં પહેલું નુકશાન તો પોતાના આત્માને જ થશે, માટે એવું ન કરવા વિનંતિ)

કૃતજ્ઞતાની ઉર્મિ

(શ્રાવકોચિત)

"હું મહાવીરનો. મારું બધું મહાવીરનું મહાવીરના ઉપકારોના પહાડોના પહાડો નીચે હું દબાયેલો...આમાં મારું અસ્તિત્વ શું ? હું છું જ નહીં. બસ, મહાવીર છે. જે છે એનું છે." આટલી ઉર્મિ સતત જીવંત હોય, પછી આ કૃતજ્ઞતા આ રીતે સહજ સક્રિય બને -

(૧) સૂતાં-ઉઠતાં, ખાતાં-પીતાં પૂર્વે ભાવથી પ્રભુને વંદના.

(૨) અવકાશની પળોમાં પ્રભુના ઉપકારનું ચિંતન.

(૩) આવકમાંથી પ્રભુના સંઘ માટે ઉચિત ભાગ.

(૪) નામ આવે એવા દાનમાં સ્વયં અલોપ થઈને મહાવીરનું પુરસ્કરણ.

(૫) દેરાસર, પેઢી, પાઠશાળા, ઉપાશ્રય આદિના કર્ત્તવ્યોમાં ઉમળકો.

(૬) હોસ્પિટલ, સ્કુલ વગેરેમાં દાન આપ્યું હોય તો ત્યાં મહાવીરની પ્રતિમાનું સ્થાપન, સંયમીઓ - જૈનો માટે સુવિધા-રાહતની માંગણી.

(૭) પ્રભુના વરઘોડા-ભક્તિ અનુષ્ઠાન આદિમાં ઉછળતા ઉલ્લાસથી ઓતપ્રોતતા.

(૮) પ્રભુના અનુયાયીને શોભે એવા વેષનું ધારણ.

(૯) ઘરમાં પગ મુકનારી વ્યક્તિ એક જ મિનિટમાં મહાવીરમય બની જાય એવો માહોલ.

(૧૦) દુનિયામાં જ્યાં પણ જાય, ત્યાં મહાવીરના અનુયાયિત્વની ખુમારી.

(૧૧) રોગ-ગરીબી વગેરેથી ગ્રસ્ત સંયમી - શ્રાવકોની વિશેષ કાળજી.

(૧૨) દુનિયા આખી મહાવીરને જાણે અને અનુસરે એવી ઝંખના.

(૧૩) અનુકૂળતા સંયોગાનુસાર સાંસારિક મહત્તમ નિવૃત્તિ લઈ શાસનની મહત્તમ પ્રવૃત્તિ.

(૧૪) શ્રાદ્ધવિધિ આદિ ગ્રંથોના માધ્યમે જિનાજ્ઞાનું જ્ઞાન અને તેનું વધુ ને વધુ

અનુસરણ.

(૧૫) સ્વજનોને સંયમગ્રહણ માટે સ્વયં પ્રેરણાકરણ અને સહર્ષ સમ્મતિપ્રદાન. સ્વયં પણ યથાશક્તિ પુરુષાર્થ.

(શ્રમણોચિત)

(૧) મહાવીરની આજ્ઞાનું પાલન - એક મુદ્દાનો કાર્યક્રમ.

(૨) વાચિક / કાયિક પ્રવૃત્તિ મહાવીરને કલંકિત ન કરે, એની પૂર્ણ કાળજી, (દા.ત.. પારિષ્ઠાપનિકા સંબંધિત પ્રવૃત્તિ)

(૩) શુદ્ધ આચારોથી મહાવીરના ગૌરવને વધારવું.

(૪) જેમ સાધર્મિક / અન્ય ગૃહસ્થને સહાય કરનાર એના ઘરમાં પોતાની તકતી નથી લગાવતા, તેમ પ્રેરણા દ્વારા નિમિત્ત બન્યા હોઈએ, તેવા જિનાલય / તીર્થના જીર્ણોદ્ધાર-નિર્માણ આદિના કાર્યોમાં તકતી દ્વારા પોતાને હાઈલાઈટ ન કરવા. એમાં પ્રભુ પર ઉપકાર કર્યો હોય એવી વિચિત્ર સ્થિતિ નિર્માણ થાય છે. પ્રભુનું ગૌરવ ઘટે છે. પ્રભુ તો રાજાધિરાજ - ત્રણ લોકના નાથ છે. દેવદ્રવ્યાદિ જે પણ રકમ વપરાઈ એ પ્રભુની જ હતી. પ્રેરણા દ્વારા આપણે સ્વલ્પ નિમિત્ત બન્યા, પણ આપણે ય પ્રભુના જ છીએ પ્રભુના દાસના દાસના દાસ...પશુથી ય પશુ, તો આપણા નામનો સૂક્ષ્મ પણ ઉલ્લેખ કરવામાં, જિનાલયની દીવાલોમાં ભગવાનના ઘરમાં કોતરાવવામાં ઔચિત્ય જણાતું નથી.

(૫) ઉપાશ્રય, પાઠશાળા વગેરેના કાર્યોમાં પણ પ્રેરક બન્યા પછી પ્રભુના નામને પુરસ્કૃત કરવામાં ઔચિત્ય જણાય છે. સ્વયં અલોપ થવું શક્ય ન જ હોય, તો કમ સે કમ પ્રભુથી ખૂબ નાના સ્વરૂપે પ્રસ્તુત થવું જોઈએ, એવું લાગે છે. પણ 'મહાવીર' શોધ્યા ય ન જડે અને સ્વયં વિશિષ્ટ રીતે કે પુનઃ પુનઃ પ્રસ્તુત થવું, એ તો અક્ષમ્ય અપરાધ જેવું લાગે છે.

(૬) પત્રિકા / પુસ્તક આદિમાં ય ઉપરોક્ત નીતિ સમજવા યોગ્ય છે.

(૭) પોતાના ઉપકારી ગુરુદેવ-પ્રગુરુદેવાદિ પ્રત્યેની તાત્ત્વિક ભક્તિ તેમની આજ્ઞાના પાલનમાં છે. માટે તેમની ભક્તિ નિમિત્તે પણ 'મહાવીર' ગૌણ ન થાય, એ કાળજી રાખવા જેવી છે - ગુરુદેવાદિ અને 'મહાવીર' વચ્ચેનું

અંતર અને ઉપકૃત-ઉપકારક ભાવ પણ યાદ રાખવા જેવો છે.

(૮) ઉપરોક્ત મુદ્દાઓ કલ્પિત નથી. શાસ્ત્રોમાં તક્તી વગેરેની વાત ન હોવા છતાં સાધ્વાચાર-સામાચારીના નિરૂપણમાં ગુરુની પહેલા પ્રભુને પુરસ્કૃત કરવાની વાત કહી છે, અને એમ ન કરવામાં આશાતના અને પ્રાયશ્ચિત્તનો નિર્દેશ કર્યો છે.

गुरुबलियत्तमईए, जो उ जिणासायणं कुणइ मूढो ।

सो गुरुतरपच्छित्तं, पावइ जमिणं सुए भणियं ॥

तित्थयर पवयण सुअं, आयरिअं गणहरं महिड्ढीअं ।

आसायंतो बहुसो, अभिणिवेसेण पारंची ॥

(જુઓ ગુરુતત્ત્વવિનિશ્ચય - ત્રીજો ઉલ્લાસ - ગાથા ૯ થી ૧૨)

(૯) મોબાઈલ, લેપટોપ વગેરે સાધનો મહાવીરના શાસનદેહના ઉત્તમાંગ (મસ્તકસમાન-શ્રમણસંસ્થા)ને ફોલી ખાતા કીડાઓ છે. જેમણે એને ફોલી ખાવાનું ક્યારનું ય શરૂ કરી દીધું છે. સંયમવિરાધના અને પ્રવચનવિરાધનાના આ પ્રબળ નિમિત્તો છે, માટે તેમને સ્વરૂપતઃ શાસનશત્રુ સમજીને - મહાવીરપ્રત્યનીક સમજીને ઘૃણા સાથે તેમનાથી દૂર રહેવા યોગ્ય છે.

(૧૦) શુભાશય - શાસનના કાર્ય આદિ આલંબનથી પણ આ સાધનોનો ઉપયોગ અનુબંધ, અનવસ્થા, આદિ દ્વારા સરવાળે **યોગબિંદુ**ના - तत्कारी स्यात् स नियमात्, तद्द्वेषी चेति यो जडः - આ ન્યાયનો વિષય બને કે નહીં, એ મધ્યસ્થ ગીતાર્થો પાસેથી જાણવા જેવું છે.

(૧૧) જે કાર્ય માટે મોબાઈલ આદિનો ઉપયોગ, ફંડ-ફાળા વગેરેની અનિવાર્યતા હોય, એ કાર્યનો ત્યાગ કરવામાં શાસનનું વધુ મોટું કાર્ય સમાયેલું છે, કારણ કે એ અનિવાર્ય કારણોથી સંયમ, સ્વાધ્યાય, સૂત્રાર્થપોરસી, શૈક્ષાનુશાસન વગેરે પણ સીદાઈ રહ્યાં છે, અને ગૃહસ્થો પણ મોટા પ્રમાણમાં અધર્મ પામી રહ્યા છે. વિશિષ્ટ લબ્ધિઓના ધારક મહાત્મા પણ દ્વિષ્ટ રાજાના સંઘ પર ઉપદ્રવ વગેરે આગાઢ કારણ સિવાય જીવનભર કદી એ લબ્ધિઓનો ઉપયોગ કરતાં નથી, એવો શ્રમણાચાર છે. **પંચવસ્તુક**માં પૂ. હરિભદ્રસૂરિ મહારાજા કહે છે -

चेइयकुलगणसंघे आयरिआणं च पवयणसुए य ।

सव्वेसु वि तेण कयं तवसंजममुज्जमंतेण ॥१०३॥

ચૈત્ય, કુલ, ગણ, સંઘ, આચાર્ય, પ્રવચન અને શ્રુત આ બધામાં જે કરવા જેવું છે, તે બધું તપ અને સંયમમાં ઉદ્યમ કરતા શ્રમણે કરેલું છે. (આ બેમાં કરેલો ઉદ્યમ શ્રમણ માટે મુખ્ય છે, ચૈત્યાદિ સર્વ કાર્યોનું ફળ એનાથી પ્રાપ્ત થાય છે. માટે **પુષ્પમાળા**માં પૂ. મલધારી હેમચન્દ્રસૂરિ મહારાજા કહે છે -

तित्थयरुद्देसेण वि सिढिलिज्ज ण संजमं सुगईमूलं । તીર્થંકરના ઉદ્દેશથી પણ સદ્ગતિહેતુ સંયમને શિથિલ ન કરવું, કારણ કે તીર્થંકર સ્વયં કહે છે કે ચૈત્યાદિ કાર્યો કરતાં તપ-સંયમ એ પ્રધાન છે.

(૧૨) મહાવીરની આજ્ઞાનુસાર નિઃસંગપણે નવકલ્પી વિહાર, સૂત્રાર્થપોરસી આદિ યતના, ગીતાર્થનિશ્રા, જિનાજ્ઞાપાલન સિવાયના પ્રોગ્રામનો અભાવ, મોબાઈલ-વિજાતીય-છાપાઓને નો એન્ટ્રી - આ રીતે વિચરતું મુનિવૃંદ એ મહાવીરનું ઉત્કૃષ્ટ ભક્ત છે. જિનશાસનનું શ્રેષ્ઠ પ્રભાવક છે. આ ગ્રુપમાં પુષ્કળ દીક્ષાઓ થશે, નૂતનદીક્ષિતો ગળથૂથીમાંથી સહજ રીતે એ જ રીતે ઘડાશે અને પ્રભાવનાના ગુણકારો થશે. કેટલા સચોટ છે પ્રભુવચન - **सव्वेसु वि तेण कयं** । પરકલ્યાણ-વર્તમાનકાળ-શાસનકાર્ય વગેરે આલંબનોથી શિથિલ-વિસંસ્થુલ-વ્યસ્ત-ત્રસ્ત બનવા કરતાં મહાવીરના આ માર્ગ પર મસ્તીથી ચાલવાથી 'મહાવીર'નું ય ગૌરવ થશે, આનુષંગિક જબરદસ્ત પ્રભાવના-પરકલ્યાણાદિ થશે અને જે ઉદ્દેશથી સંસારત્યાગ કર્યો, એ ઉદ્દેશ સફળ થશે.

(૧૩) મહાવીરનો આ માર્ગ યેન કેન પ્રકારેણ પરકલ્યાણનો માર્ગ નથી. દીક્ષા અને વડીદીક્ષાની સમગ્ર પ્રતિજ્ઞાઓમાં અપવાદભૂત એકાદ પણ પ્રતિજ્ઞા 'કોઈને પમાડવા' આદિની નથી. તો જે પ્રતિજ્ઞા નથી લીધી, એની પાછળ પડવું અને જે પ્રતિજ્ઞા લીધી છે, એને તદ્દન ગૌણ બનાવવી, આ મહાવીરના માર્ગની વિડંબના છે. જો દીક્ષા બાદ થોડું ઘણું ભણીને આ જ ઢાંચામાં જવાનું હોય, તો પછી રંગેચંગે ઉજવાતી દીક્ષા - વડીદીક્ષા એની વિધિ એની પ્રતિજ્ઞા આ બધું માયા-મૃષા ઠરે છે. **ઉપદેશમાલા**માં કહ્યું છે -

जो जहवायं न कुणइ, मिच्छद्दिट्ठी तओ हु को अन्नो ? ।

वड्ढेइ य मिच्छत्तं, परस्स संकं जणेमाणो ॥५०४॥

જે જેમ કહ્યું - પ્રતિજ્ઞા કરી, તે મુજબ કરતો નથી. તે જ તો મિથ્યાદૃષ્ટિ છે. બીજાને ય શંકા જન્માવીને તે મિથ્યાત્વવૃદ્ધિ કરે છે. **किमयमेवंविध एवैतेषां धर्मः** ?- શું એમનો ધર્મ આવો હશે ? શું મહાવીરે આવા આચારનો ઉપદેશ આપ્યો હશે ? '**अमी हि अन्यथावादिनो-ऽन्यथाकारिणः**' આ લોકો પ્રતિજ્ઞા અલગ કરે છે, ને કરે છે અલગ. આમ તો કહેવાય છે કે સાધુ ઇલેક્ટ્રીક સાધનો વગેરે ન વાપરે, ને અહીં તો જુદું જ દેખાય છે. માટે આ ધર્મ જ બરાબર નથી લાગતો. આ પરિસ્થિતિ મહાવીર પ્રત્યેના દ્રોહની સ્થિતિ છે.

(૧૪) **મહો. શ્રીયશોવિજયજી મહારાજા** પ્રભાવનાની વ્યાખ્યા કહે છે.

જિનશાસન ગુણવર્ણના, જેહથી બહુ જણ હુંત ।

કીજે તેહ પ્રભાવના, પાંચમું ભૂષણ ખંત ॥

આ વ્યાખ્યાનુસારે આચારશૈથિલ્યથી થતી કહેવાતી પ્રભાવના એ પૂર્વોક્તાનુસારે જનનિંદાપર્યવસિત હોવાથી અપભ્રાજના છે અને શુદ્ધાચાર-ચુસ્તતા એ અહોભાવાદિનું કારણ હોવાથી શાસનની પ્રભાવના છે. મહાવીરના માર્ગની યશવૃદ્ધિ છે. મહાવીરની તાત્ત્વિક ભક્તિ છે.

(૧૫) છાપા અને પૂર્તિઓમાં શું આવે છે, એ ગૃહસ્થો સારી રીતે જાણતા હોય છે. સંયમીઓને એમાં રત જોઈને તેઓ અધર્મ-શાસન પ્રત્યે અબહુમાન પામે છે. મુમુક્ષુ-અન્ય દીક્ષિતો વગેરે પણ ધીમે ધીમે કુતુહલ રસ ધરાવતા થાય છે. અને આ રસ ક્યાં જઈને અટકે એનો ભરોસો નથી. પાંચમા આરાના વક્ર જડ. જીવો બહુધા ગુરુવચનનું નહીં, પણ ગુરુનું જ અનુકરણ કરતાં હોય છે. સ્વાધ્યાય-સંયમવ્યુચ્છેદક + અપભ્રાજનાકારક આ હાનિની સામે બીજો (વાંચનજનિત) બલવત્તર લાભ જણાતો નથી.

●●●

ગુરુનું 'નામ' કરવું સારું કે નહીં ?

અનાદિકાળથી જીવને પોતાના નામનો ખૂબ જ મોહ છે. આ મોહ જો દેવ-ગુરુના નામ પર આવી જાય, તો એને પ્રશસ્ત મોહ કહી શકાય, એને મોક્ષયાત્રાનો પ્રારંભ પણ કહી શકાય. ધન્ય છે એ જીવો, જેઓ પેન તપાસવા માટે સહજપણે દેવ-ગુરુના નામ લખે છે. એટલી જ સહજતાથી કે જેટલી સહજતાથી બીજા જીવો પોતાનું નામ લખે છે. અસ્તિત્વના વિસર્જનની આ સાધના છે જેમાં 'હું'નો પત્તો જ નથી. ક્યાંય નહીં. જે છે જ નહીં એ ક્યાં દેખાય ? જે પોતાને જ નથી દેખાતો, એ બીજાને ક્યાંથી દેખાય ?

બસ, આ શૂન્યમાં જ આકાર લે છે આગમવચન **तद्दिट्ठी तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे**...સાચો સાધક જાણે 'હોતો'જ નથી. હોય છે માત્ર ગુરુ. સાધક ગુરુના ઈશારે ચાલે એમાં હજી ય ઉણપની અનુભૂતિ થાય છે. 'ગુરુ જ ચાલે છે' આ છે સાધનાની પૂર્ણતા. દ્વાદશાર નયચક્રના કાલવાદના પરિપ્રેક્ષ્યમાં કહીએ તો '**कालः पचति भूतानि**' આમાં સાશંકતા છે. '**काल एव पच्यते**' અહીં નિશ્ચિતતા છે.

નામ અને રૂપ એ જ સંસાર છે. સિદ્ધદશામાં નામ અને રૂપ નથી, તો સંસાર પણ નથી. નામાધ્યાસ અને રૂપાધ્યાસ (દેહાધ્યાસ) આ બેનો હ્રાસ કરે તે ખરી સાધના, આ બેની પકડમાંથી આત્માને મુક્ત કરે, તે મોક્ષયાત્રા અને આ બેની પકડને મજબૂત કરે તે સંસારયાત્રા...**नामरूपे हि संसारः...**

પોતાના નામનો મોહ છૂટી જાય અને એ મોહ દેવ-ગુરુના નામ પર આવી જાય. એ અનાદિની અવળી યાત્રાનો એક મહાદુર્લભ વળાંક છે. 'મને વ્હાલું લાગે પ્રભુ તારું નામ'-આ વચન હવે વર્તન બને છે. હોઠે ને હૈયે દેવ-ગુરુનું નામ રમે છે. પહેલા જે કદાચ જીવનનો એક ભાગ હતો, એ હવે જીવન બને છે. મહાયોગીના શબ્દોમાં હવે 'કપટ રહિત થઈ આતમ અરપણા' થાય છે. જેનું સ્વામિત્વ પોતાનું નથી, એના સ્વામિત્વનો દાવો કરવો એ કપટ જ ને ? 'અરપણા' કરવામાં કશું જ જતું નથી. સિવાય અધ્યાસ - ભ્રમ.

દરેક ક્રિયાની પ્રતિક્રિયા હોય છે, એ ન્યાયે આ અર્પણની સામે દેવ-ગુરુ પ્રત્યર્પણ કરે છે. સાધક પૂર્ણસ્વરૂપની પ્રાપ્તિ કરે છે. કંટકન્યાયથી મોહોદ્ધાર કરીને હવે પ્રશસ્ત મોહ પણ વિદાય લે છે. અને સાધક સિદ્ધદશાને પામે છે.

આ પ્રક્રિયામાં એક વળાંક એવો પણ સંભવે કે જેમાં અરપણા એક અલગ

આકાર ધારણ કરે. મારો વ્હાલો સૌનો વ્હાલો બને એવી સંવેદના ઝંકૃત થાય. દુનિયામાં દેવ-ગુરુનું નામ કરવાની ઝંખના થાય. દેવ-ગુરુના ગુણોને પ્રસિદ્ધ કરવાના પ્રયત્નો થાય. એ પરાર્થપ્રયત્નોના પરિણામ-સ્વરૂપે અનેક જીવો પ્રશસ્ત મોહની પ્રાપ્તિ કરે અને ક્રમશઃ નિર્મોહદશાને પામે. આ પરાર્થસિદ્ધિથી એ જીવ પણ શીઘ્ર સ્વાર્થસિદ્ધિ કરે. આ રીતે દેવ-ગુરુનું 'નામ' કરવાની પ્રવૃત્તિ પ્રશસ્ય ઠરે છે.

પણ બીજી રીતે આ પ્રવૃત્તિ વિચારણીય બની જાય છે. જ્યારે પરાર્થભાવનાનું સ્થાન પક્ષભાવના લઈ લે. 'મારા ગુરુ મહાન' આ વચનનું તાત્પર્ય 'બીજા બધા નિમ્ન' એવું બની જાય. ગુરુભક્તિની ભીતરમાં ભક્તવૃદ્ધિની સ્પૃહા રમવા લાગે, ગુરુની મહાનતાના નાતે આડકતરી રીતે પોતાની મહાનતાને ઠરાવવા ને ઠસાવવાનો મનસુબો થવા લાગે. 'ગમે તે' ભોગે આ 'ગુરુભક્તિ' માટે કમર કસવામાં આવે. ને એ પ્રયત્નોનું અનૌચિત્ય પરાર્થભાવનાને શરમાવીને વિદાય લેવા માટે મજબૂર કરી દે. આ સ્થિતિમાં બીજાને અને પોતાને શું પરિણામ મળી શકે ? આને પ્રશસ્ત મોહ કહેવો ? કે મોહ ?

'મારા ગુરુ મહાન છે' એનો અર્થ એ છે કે 'ગુરુ મારા જીવનમાં મહાન છે.' દુનિયામાં હું ગમે તેટલા ઘાટા પાડીને કહું કે 'મારા ગુરુ મહાન છે,' પણ જો મારા જીવનમાં ગુરુ કરતાં વિષયો પ્રત્યેનું આકર્ષણ વધારે છે, જો ગુરુદર્શન કરતાં વિજાતીયદર્શનનો રાગ વધારે છે, જો ગુરુની સેવા કરતાં ભક્તોના મેવા મને વધારે પ્રિય લાગે છે. જો ગુરુના ગુણાનુવાદની પાછળ 'મારી પીપૂડી' વગાડવાનો જ મારો આશય છે, તો વાસ્તવમાં મેં પોતે જ મારા ગુરુની મહાનતાનો સ્વીકાર કર્યો નથી.

'ભઈ મગનતા પ્રભુ ગુણ રસ કી, કુણ કંચન ? કુણ દારા ?' વિશ્વસુંદરી વાંદરીથી ય અધમ લાગે અને હીરાના ઢગલા ધૂળ બરાબર લાગે, ત્યારે સમજવું કે દેવ-ગુરુ ખરેખર મહાન લાગ્યા છે. ગુરુની ઈચ્છાને સમજવા માટે મન સતર્ક બની જાય, ગુરુવચનને ઝીલવા માટે કાન સરવા બની જાય, ગુરુની આજ્ઞાને અનુસરવા માટે જીવન ઉત્સુક બની જાય, ત્યારે સમજવું કે ગુરુની મહાનતાનો ભાવથી સ્વીકાર કર્યો છે. પણ જો આમાનું કશું જ ન હોય, તો બહારથી ભલે સેંકડો ગુણાનુવાદો થઈ જાય, વાસ્તવમાં ગુરુની અવગણના થઈ છે.

હકીકતમાં તો ગુરુના માધ્યમે ગુરુતત્ત્વનો સ્પર્શ કરવાનો છે. ગુરુ કે કોડિયું છે, ગુરુતત્ત્વ એ જ્યોત છે. કોડિયા પ્રત્યે કૃતજ્ઞ બનવાનું છે, કોડિયાનો આદર કરવાનો છે, પણ અવલંબન જ્યોતનું કરવાનું છે. ગુરુ એ એક વ્યક્તિ છે. ગુરુતત્ત્વ એ સમષ્ટિ છે.

અઢી દ્વીપના ત્રૈકાલિક અનંતાનંત ગુરુઓ...અનંત કેવલજ્ઞાનીઓ..અનંત ચૌદ પૂર્વધરો...અનંત ક્ષમાશ્રમણો...એ બધાનું પ્રતિનિધિત્વ ગુરુ કરે છે. જ્યોત જેમાં અનંત ગુરુઓના ગુણો ઝગમગી રહ્યા છે. કોડિયાના માધ્યમે જ્યોત સુધી પહોંચવાનું છે. જેમાં ગુરુના ગુણો પણ છે અને અનંત ગુરુઓના પણ જ્યોત એટલે આ ગુણો જ્યોત એટલે ગુરુતત્ત્વ.

આટલું સમજાય પછી એ જ્યોત જ્યાં પણ હોય, એનું અવલંબન કરવામાં કોઈ જ તકલીફ પડતી નથી. એનો ઈન્કાર એ અનંત ગુરુનો પણ ઈન્કાર છે, અને તાત્ત્વિક દૃષ્ટિએ પોતાના ગુરુનો પણ. ગુરુતત્ત્વના સ્વીકાર વિના વાસ્તવિક ગુરુસ્વીકાર શક્ય જ નથી. વૈષયિક આકર્ષણનું સ્થાન ગુણોનું આકર્ષણ લઈ લે. મનની જોહુકમીનું સ્થાન ગુર્વાજ્ઞા લઈ લે અને દૃષ્ટિરાગનું સ્થાન ગુરુતત્ત્વસમર્પણ લઈ લે, આનું નામ વાસ્તવિક ગુરુસ્વીકાર.

ગુરુસ્વીકારનો મૂળ ઉદ્દેશ 'હું' ને ભૂંસવાનો છે, નામાધ્યાસ અને રૂપાધ્યાસમાંથી મુક્ત થવાનો છે. આત્માર્થની દૃષ્ટિએ ગુરુનું નામ કરવાનો અર્થ આ જ હોઈ શકે. પરાર્થદૃષ્ટિએ પૂર્વોક્ત રીતે બાહ્ય પ્રવૃત્તિ પણ પ્રશસ્ય હોઈ શકે, પણ એ તો આત્મસાધકે સ્વયં આત્મસાક્ષિક નિરીક્ષણ કરવું પડે કે સંવિજ્ઞગીતાર્થને પૂછવું પડે, કે હું કઈ યાત્રા કરી રહ્યો છું ?

જે. ૧૫. શંખેશ્વર **- હેમશિશુ આ. કલ્યાણબોધિસૂરિ**
વિ.સં. ૨૦૬૯

●●●

आर्षविश्व
आचार्य कल्याणबोधि

कथा...अंतरंग विश्व की

(उपमिति-१००८ साल प्राचीन एक अनुपम कथा)

एक ऐसा माध्यम, जो सहज उत्सुकता को जन्म दे, आबालवृद्ध सर्व के रस का विषय बने, उस का नाम है कथा । अत एव अनादि काल से कथा का सातत्यपूर्ण आकर्षण रहा है । चाहे दादी माँ की बाते हो, या सचित्र बालपुस्तक हो, नाटक का रंगमंच हो या चलचित्र का परदा हो, नोवेल बुक हो या रामायण सत्र हो, कथा का साम्राज्य सर्वव्यापी है ।

यहाँ एक ऐसी कथा की बात करनी है, जो उपरोक्त सर्व कथा में व्याप्त है । जीवन की प्रत्येक घटना जिस कथा के साथ संलग्न है । मेरी भी यही कथा है, और आप की भी । जिसने इस कथा को नहीं जाना, उसने कुछ भी नहीं जाना । दुन्यवी उपाधियाँ उस के लिये वास्तव में गौरव नहीं, किन्तु कलंक है ।

जिस कथा में विश्वव्यवस्था एवं विश्वसंचालन का रहस्य विधा से प्रकट हुआ है। हम जिन जिन प्रसंगो से उत्तीर्ण होते है, उस प्रत्येक प्रसंग का जिस कथा में 'पॉस्टमॉर्टम' हुआ है । जिस कथा के परिशीलन के बाद समग्र जगत का आर-पार दर्शन होता है । आत्मा की पारदर्शी दृष्टि के आवरण दूर होते है...परमशांति एवं परमसुख स्वाधीन होते है । विश्वमैत्री की भावना हृदय में प्रतिष्ठित होती है । जीवमात्र में निहित शिवस्वरूप का साक्षात्कार होता है । परम समाधि की स्थिति सहज होती है एवं आत्मा यही जीवन्मुक्ति के परमानंद का अनुभव करती है ।

उस कथा का नाम है - उपमिति भव प्रपंच कथा । जिसके लेखक है परम कारुणिक श्रमण श्रीसिद्धर्षि गणि । वि.सं. ९६२ में संस्कृत भाषा में इस कथा का सृजन हुआ है । ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी के दिन इस कथा का १००८ वा जन्मदिन आ रहा है । जन्मदिन उनका ही मनाने योग्य है, जिसने परोपकार किया हो, विश्व का मंगल किया हो । इस कथा ने आज तक हजारो श्रोताओ को पारदर्शी दृष्टि का दान करके जीवन्मुक्ति का परमानंद दिया है । संक्लेशो की अग्निवर्षा से मुक्ति दे कर समाधि की सुधावृष्टि का दान दिया है ।

जिस विश्व को हम देख रहे है, वह बहिरंग विश्व है, जिसकी अगम्य समस्याओ के समाधान अंतरंग विश्व में निहित है । जब तक आत्मा को अंतरंग विश्व के दर्शन न हो, तब तक वह चक्षुरहित होती हुई भी वास्तव में अंध रहती है । तीव्र बुद्धि होते हुए भी मूर्ख रहती है । अंतरंग विश्व से अपरिचित आत्मा बहिर्दष्टि से घटनाओ का अर्थघटन एवं व्यक्तिओ का मूल्यांकन करती है । अत: चिंता, संताप, कलह, असंतोष एवं अनेक शारीरिक-मानसिक रोग एवं आत्मघात तथा दुर्गति जैसे भयानक फल को प्राप्त करती है ।

उपमिति कथा आत्मा के इस अनादि के अंधत्व को दूर करती है । मानों एक दिव्य अंजन करती है, और आत्मा को अंतरंग विश्व का साक्षात्कार होता है । एक और अनंत गुणसमृद्धि का दर्शन होता है तो दुसरी और अनंत दोषदावाग्नि दृष्टिगोचर होता है। अंतरंग दोषो में सर्व दु:खो के मूल साक्षात् होते है, एवं अंतरंग गुणो में सर्व सुखो की प्रापकता प्रत्यक्ष होती है । विश्व का प्रत्येक जीव वास्तव में शुद्ध स्वरूपी है । आत्मा और परमात्मा के बीच वास्तव में कोई भी अंतर नहीं है । जैसे कुशल शिल्पी शिला में ही शिल्प का दर्शन करते है, उसी तरह ज्ञानी आत्मा में ही परमात्मा का दर्शन करते है ।

एक था प्रदर्शन । लोगो ने एक अद्भुत शिल्प को घेर लिया था । जीवंत सा था वह शिल्प । लोग 'अद्भुत...अद्भुत' बोल रहे थे । उसी समय उस के शिल्पी का वहाँ आगमन हुआ । किसी ने लोगो को उनका परिचय दिया । अभिनंदन एवं प्रशंसा की मानों वर्षा हो गयी । तथापि शिल्पी की नम्रता आश्चर्यजनक थी । किसी जिज्ञासुने विस्मय से प्रश्न किया, 'आप ने ऐसा अद्वितीय सर्जन कैसे किया ?' शिल्पी ने वही नम्रता के साथ उत्तर दिया - 'मैंने सर्जन किया ही नहीं.' सब की आँखो में प्रश्नार्थ है....शिल्पी ने स्पष्टता की - 'मैने तो केवल विसर्जन किया है । शिल्प तो शिला में पहले से ही हाजिर था, मैने अवशेष का विसर्जन कर दिया, शिल्प स्वयं प्रकट हो गया ।

अवशेष दूर हो जाये, तो शिला ही शिल्प है । दोष दूर हो जाये, तो आत्मा ही परमात्मा है । जीवन का सार्थक्य सर्जन में नहीं, विसर्जन में है । अज्ञानी समग्र जीवन को संपत्ति, साधन आदि के सर्जन में लगा देता है, और अंत में सब कुछ छोडकर असहायतया बिदा होता है । साथ में होते है केवल दोष । भयानक दु:खमय होता है उसका परलोक । बोये है नीम, तो फिर आम की आशा व्यर्थ है । ज्ञानी समजते है, कि विसर्जन जैसा सर्जन कोई भी नहीं । दोषो का विसर्जन ही आत्मगुणो का सर्जन है । **उपनिषदो** का संदेश याद आता है - **उपाधिनाशाद् ब्रह्मैव** ।

दोषो का विसर्जन ही दुःखो का विसर्जन है । इस के सिवा दुःखमुक्ति का ओर कोइ उपाय नहीं है । **आगमो** में भी यही बात की गई है – **रागस्स दोसस्स य संखएण, एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥** कंटकी वृक्ष से प्रेम करके काँटो की फरियाद करनी व्यर्थ है, उसी तरह दोषो के साथ मित्रता करके दुःखो की फरियाद करनी भी व्यर्थ है । आगम में कहा है – जुद्धारिहं खलु दुल्लहं । अतिदुर्लभ इस मनुष्यदेह का साफल्य अंतर्युद्ध करने में है, परम पराक्रम से दोषो को पराजित करके ज्वलंत विजय प्राप्त करने में है ।

'उपमिति' इसी तत्त्व को रोचक कथा द्वारा प्रस्तुत करती है । करीब १६००० श्लोक प्रमाण यह ग्रंथ आठ प्रस्तावो में विभक्त है । एक एक प्रस्ताव आता जाता है, एक एक घटना का मानो जीवंत प्रसारण होता जाता है, और संसार का पर्दाफाश होता जाता है । मनोमंथन को अभिनव अभिनव आलंबन मिलता जाता है । हिंसा और क्रोध से हुइ नंदिवर्धन राजकुमार की दुर्दशा...अहंकार और असत्य से रिपुदारण राजा ने प्राप्त किया हुआ कटु फल....चोरी और छल से निर्मित वामदेव की दर्दपूर्ण कथा...लोभ और मैथुन से धनशेखर की बरबादी...महामोह और परिग्रह से घनवाहन राजा का सत्यानाश ।

प्रतिक्षण उत्सुकतादायक कथा चलती रहती है, और पर्दे दूर होते रहते है...एक के बाद एक...वाचक प्रतीति करते है – यह तो मेरी ही बात...मेरी ही कथा...मैं ही नायक...मैं ही खलनायक....दुर्भाग्य यही, कि आज तक इसे नहीं जाना । सौभाग्य यही, आज यह पर्दाफाश हुआ ।

योगशास्त्र में कहा है – आत्माऽज्ञानभवं दुःखं–मात्मज्ञानेन हन्यते । दुःख का जन्म होता है, आत्मा के अज्ञान से, और दुःख का विनाश होता है आत्मा के ज्ञान से।

शाखा एवं प्रशाखा से वृक्ष समृद्ध बनता है, उसी तरह कथा और अवान्तरकथा से यह ग्रंथ समृद्ध बना है । स्पर्शसुख की आसक्ति से 'बाल' की विडंबना दयोत्पादक है...स्वाद की लोलुपता से हुइ 'जड' की दुर्दशा सचमुच दर्दनाक है...सुगंध के आशिक 'मंद' की यातना स्तब्ध कर देती है...रूप के चाहक 'अधम' की दुःखकथा खतरे का निर्देश करती है...तो संगीत के गुलाम 'बालिश' की व्यथा विचाराधीन कर देती है । संसार की अत्यन्त रागी आत्मा भी इस कथाधारा से आप्लावित हो, तब उस का मन निर्णयबद्ध होता है, कि संसार का प्रत्येक सुख, दुःख से प्राप्त होता है, वह सुख वास्तव में दुःखरूप है, और उसका परिणाम अनेकगुण दुःख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। **आगमवचन** है –

खणमित्तसुक्खा बहुकालदुक्खा ।

सांसारिक सुख क्षणमात्र का है, जब कि दुःख दीर्घ-सुदीर्घकालीन है ।

कथाकारने केवल नकारात्मक (नेगेटीव) बात को ही उपन्यस्त नहीं कि है, अपितु समांतर ही हकारात्मक (पोझिटीव) बात भी ऐसी विधा से प्रस्तुत की है, कि वाचक मंत्रमुग्ध हो जाये । गुणवान बनने के लिये, उस के हृदय में प्रबल अभिलाषा उत्पन्न हो जाये । उत्कृष्ट भोगसामग्री के बीच भी मनीषी की निर्विकार चित्तवृत्ति.... विचक्षण का ज्वलंत विराग...बुधसूरि का निरुपम चरित्र...उत्तम की अद्भुत निःसंगता और कोविद की अनासक्ति...एक एक गुण का दर्शन भ्रामक सुख की दौड़ को स्थगित करने के लिये पर्याप्त है । उस स्रोत से आत्मा को कभी तृप्ति नही मिल सकती, जो आत्मा की भीतर से नही निकला है । हज़ारो ययाति - दुर्योधन - गिझनी मृगतृष्णा की प्यास में जीवनभर दौड़े गये है...कस्तूरीमृग की तरह सुरभि की शोध में भटकते रहे है...पर किसी को भी कुछ भी हाथ नही लगा है...सिवा पसीना, परिश्रम और पीडा...सुख तो भीतर है, वह बाहर कैसे मिल सकता है ?

उपमिति केवल कथाग्रंथ या धर्मग्रंथ नहीं है, अपितु सफल जीवन की शैली है...सुख-शांति का राजमार्ग है...इस जनम और जनमो जनम को सुखसमृद्ध करने की कला है । कुशल डॉक्टर, बुद्धिशाली वकील, उद्योगपति, तीव्र मेधावी व्यापारी, अध्यापक और आइ.टी. के मास्टरमाइन्ड छात्र...जिन के पास भी समजशक्ति है, उन सब को हार्दिक निमंत्रण है...उममिति के अंतरंग विश्व में पदार्पण करने के लिये... आप की बुद्धि की सार्थकता भी इसमें है, और जीवन की सफलता भी ।

इस के वाचन से आप को ही प्रतीत होगा की बाह्य सृजन, संपत्ति, सत्ता, प्रतिष्ठा सब कुछ न केवल व्यर्थ है, अपि तु भयानक भी है । एक एक प्रस्ताव हृदयग्रन्थि का विच्छेद करते जायेंगे, मन को द्रवित करते रहेंगे, और जब अंतिम प्रस्ताव पराकाष्ठा को प्राप्त होगा, तब...थोडी भी संवेदनशीलता होगी, तो अश्रुओं का बाँध तूट जायेगा, और उन अश्रुओ की उष्मा ही दोषो को एवं दुःखो को विनष्ट कर देगी ।

इस कथा को उस के मूल रूप में संस्कृत में पढ़ने का जो आनंद और जो अनुभूति है, वह वर्णनातीत है । तथापि जो संस्कृत भाषा से परिचित नहीं है, उन के लिये संतों एवं सज्जनोने इस ग्रंथ का अनुवाद किया है । उपमिति विश्व का अद्वितीय रूपकग्रंथ है । विश्व की अनेकानेकभाषाओ में उस का अनुवाद हुआ है । गुजराती अनुवाद की पाँच

आवृत्तियाँ भी हो चूकी है । पश्चिमी विद्वद्वृंद इस कथा की अस्मिता पर आफरीन है, और हमारी स्थिति...घर की मूर्गी...

चलो, सब ले गये – आप रह गये – इस स्थिति से बाहर निकले...आत्मार्थी बने...आत्मकथा के अनजानपन का यह कलंक मिटा दे...बहुश्रुत गुरुभगवंत का शरण ले..इस कथा का रसास्वाद ले, और कृतार्थ बने ।

परम तारक सर्वज्ञवचन के विरुद्ध लिखा हो, तो क्षमायाचना करता हूँ ।

अवशेष दूर हो जाये, तो शिला ही शिल्प है । दोष दूर हो जाये, तो आत्मा ही परमात्मा है ।

जीवन का सार्थक्य सर्जन में नहीं, विसर्जन में है ।

उस स्त्रोत से तुझे कभी तृप्ति नही मिलेगी, जो तेरी भीतर से नही निकला है ।

विश्व की एक अद्भुत कृति का १००८ वा जन्मदिन

●●●

अध्यात्म का अमृत

अध्यात्मोपनिषद्

अंग अंग से लावण्य बह रहा है...मानों सौन्दर्य की सरिता बह रही है...नशा निसीम बना है...मोहकता का साम्राज्य छा गया है...अदायें अवर्णनीय बनी है...नृत्य चरम सीमा को प्राप्त हुआ है...पत्थर को भी पानी पानी कर दे, ऐसी स्थिति का सृजन हुआ है । नाम ही तो है रूपकोशा...रूप का मूर्तिमंत कोश ।

पर रे ! मुनि स्थूलभद्र की आँखे भी उंची नहीं हो रही है और एक रोम भी कंपित नहीं हो रहा । मानों कुछ भी है ही नहीं, ऐसा उपेक्षाभाव । जैसे स्वयं वहा हाज़िर ही नहीं, ऐसा अंतर्मुख भाव । सचमुच, आत्मगुणों की अनंत समृद्धि की तुलना में बाहर था भी क्यां ? बाह्य लावण्य के आवरण में मल-मूत्र की गंदगी....नृत्य के नाम पर व्यर्थ उछल-कूद...संगीत के बहाने से केवल शोर । नहीं, बाहर कुछ भी नहीं था, और वह खुद भी वहा नहीं है, वह तो मग्न है, भीतरी परमानन्द के अमृतकुंड में ।

शास्त्रने कहा हुआ तत्त्व जिसके जीवन में जीवंत बना हो उसका नाम है संत । शास्त्र है **अध्यात्मोपनिषद्** और तत्त्व है विराग ।

वासनानुदयो भोग्ये, वैराग्यस्य तदावधिः ।
अहंभावोदयाभावो, बोधस्य परमावधिः ॥
लीनवृत्तेरनुत्पत्ति-र्मर्यादोपरतेस्तु सा ।
स्थितप्रज्ञो यतिरयं, यः सदानन्दमश्नुते ॥

शास्त्रकथित तत्त्व जिसके जीवन में जीवंत बना है उसका नाम है संत

भोग्य की उपस्थिति में भी वासना न जगे, वह विराग की पराकाष्ठा है । अहंकार की संभावना ही नष्ट हो जाये, वह ज्ञान की चरम सीमा है । राग-द्वेष की वृत्ति की ऐसी मृत्यु हो, कि जिसके बाद जन्म ही नहीं, वह विरति की पराकाष्ठ है । विराग, ज्ञान व विरति का यह त्रिवेणी संगम जहा

साकार हुआ है वह संत 'स्थितप्रज्ञ' है । वह संत सदा आनंद में मग्न रहते है ।

शुक्ल यजुर्वेद से संबंधित ग्रंथ है **अध्यात्मोपनिषद्** । जिसकी रचना अज्ञात पूर्व महर्षिने की है । संस्कृत भाषा में अनुष्टुप् छंद में रचित इस ग्रंथ में ८१ श्लोक है । पूर्व महर्षिने इस ग्रन्थ में अध्यात्म का अनुपम अमृत प्रस्तुत किया है....**वासनानुदयो भोग्ये....**

अनुपस्थित भोग्य की भी तृष्णा यह रागी का लक्षण है, उपस्थित भोग्य के प्रति भी उपेक्षा यह विरागी का लक्षण है । मनुष्य में से राग दूर हो जाये, तो भगवान बाकी रहते है । इसी लिये विरागी को भगवानतुल्य कहा गया है -

नीरख कर नवयौवना, लेश न विषय निदान ।
माने काष्ठ की पुतली, वह भगवान समान ॥

रागी केवल उपरी भाग को देखता है । विरागी आरपार देखता है । रागी केवल वर्तमान को देखता है । विरागी तीनों काल को देखता है । रागी का दर्शन अपूर्ण है । विरागी का दर्शन पूर्ण है । रागी को रूपवती युवती पर राग है एवं कुरूप वृद्धा पर द्वेष है । विरागी को उन दोनों के प्रति समभाव है । विरागी समजता है, कि उनमें से किसी पर भी राग करने जैसा नहीं है, यत: दोनों का शरीर अशुचि है । तथा उनमें से किसी पर भी द्वेष करने जैसा नहीं है, यत: दोनों की आत्मा परम पवित्र है...**वैराग्यस्य तदावधिः ।**

एक श्रीमंत के पुत्रने अत्यंत रूपवती कन्या के साथ लव-मेरेज किया । वह घर से बाहर जाता, तो भी पत्नी के ही खयालों में खो जाता । जहा भी देखे वहा वह ही दिखाई देती । वह पास में न हो, तब उसकी चिंता सताया करती । घर पर आठ-दस फोन न करें, तब तक उसे चैन नहीं आता था । घर में वापस आकर वह पत्नी का मोबाईल चेक कर लेता था । शादी को अभी एक ही साल हुआ था, कि उसकी पत्नी का कार-एक्सीडेन्ट हुआ । समाचार मिले और मानों उस युवक के सिर पर बिजली गिरी। आई.सी.यु. के बाहर रो रो कर उसकी आँखों में सूजन आ गई । जूते की आवाज़ आई और उसने उपर देखा । डॉक्टर को देखते ही वह उसके पावों में गिर गया...प्लीज़, सेव माय वाइफ...डॉ. साहब ! जो लेना हो ले लेना...मगर...मैं उसके बिना जी नहीं पाउंगा...प्लीज़... डॉक्टरने आश्वासन दिया ।

रागी केवल उपरी भाग को देखता है, विरागी आरपार देखता है ।

ट्रीटमेन्ट चली । जान बच गई । छह दिन के बाद चहरे पर की पट्टी खुली, और युवक हक्का बक्का रह गया । काँच के टुकडों ने पत्नी के चहरे को बेहद बदसुरत बना दिया था । युवक सीधा बाहर निकल गया । डॉक्टर की केबिन में जाकर कह दिया, ''जो लेना हो, ले लेना...उसे झहर का इंजेक्शन देकर खतम कर दो ।''

'लव' करनेवाला भी राग है, चिंता व शंका करने वाला भी राग है । हसनेवाला और रोनेवाला भी राग है । खतम कर देनेवाला भी राग है और अन्य रूप की शोध करनेवाला भी राग है । परम सत्य यह है, कि जहा राग है, वहा सुख की कोई संभावना नहीं है । **आगमवचन** है - **एविंदियत्था य मणस्स अत्था दुक्खस्स हेऊ मणुयस्स रागिणो । अध्यात्मोपनिषद्** के तत्त्व का अब साक्षात्कार होता है - **वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य तदावधिः** । जो भीतर में पूर्ण है, उसे बाहर सब कुछ शून्य दिखता है । और शून्य के प्रति वासना जगे, यह संभव ही नहीं । युवक के पास आंतरिक पूर्णता नहीं थी, इसी लिये वह दुःखी हो गया । अज्ञानी की दृष्टि में वह तब ही दुःखी था, जब रो रो कर उसकी आँखो में सूजन आ गयी थी । ज्ञानी की दृष्टि में वह तब भी दुःखी था, जब वह पत्नी के साथ विलास कर रहा था । राग =दुःख । विराग =सुख । कितना दिव्य है **अध्यात्मोपनिषद्** का वचन **यः सदानन्दमश्नुते** ।

जो भीतर में पूर्ण है, उसे बाहर सब कुछ शून्य दिखता है ।

भीतर की शून्यता ही जीव को बाहर दौड़ाती है । किन्तु जो भीतर में शून्य है, उसे दुनिया की कोई चीज भर नहीं सकती । कौआ खुद काला है, तो चूने का कितना भी रंग उसे सफेद नहीं कर सकता । हाँ, उससे कौए को ऐसा भ्रम हो सकता है, कि मैं सफेद हो गया । पर भ्रम तो भ्रम ही है और वास्तविकता वास्तविकता है । कही पढ़ा था -

हमारी जिंदगी का यह, सरल सीधा परिचय है ।
रुदन में वास्तविकता है, हंसने में अभिनय है ॥

जो भीतर में खाली है, उसे बाहर की कोई चीज भर नहीं सकती ।

चूने के रस में स्नान करे, तो भी कौआ काला ही होता है । सुख के सैंकड़ो साधनो के बीच भी रागी दुःखी ही होता है । हाँ, भ्रम व अभिनय सुख का भी हो सकता है, पर उसका क्याँ फायदा ? एक भिक्षुक कल्पना करे, कि मैं प्रधानमंत्री या उद्योगपति बन गया, तो उसका क्याँ लाभ ? उसकी पेट भरने की चिंता तो ज्यों कि त्यों है । रागी भ्रम को वास्तविकता समजता है...अतः सुख-दुःख के भ्रम में फसकर अपने आप को दुःखी करता है । विरागी वास्तविकता को ही वास्तविकता समजता है । अतः वह किसी भी निमित्त की उपस्थिति में सहजानंद में मग्न रहता है । कोयले के ढ़ेर में लेटे, तो भी हंस सफेद होता है । दुःखों के सैकड़ो निमित्तों के बीच भी विरागी सुखी होता है....**सदानन्दमश्नुते...**

विराग सुख का परम रहस्य है । विराग में भगवत्त्व की भव्यता है । **नीतिवाक्यामृतम्** में कहा है -

स खलु प्रत्यक्षं दैवतम्, यस्य
परस्वेष्विव परस्त्रीषु निःस्पृहं चेतः ।

प्रत्यक्ष भगवान है वह, जिसे परधन और परस्त्री के प्रति कोई भी स्पृहा नहीं है। **अष्टावक्रगीता** में विराग की इसी अस्मिता का दर्शन हो रहा है -

सानुरागां स्त्रियं दृष्ट्वा, मृत्युं वा समुपस्थितम् ।
अविह्वलमनाः स्वस्थो, मुक्त एव महाशयः ॥

आगमन चाहे अनुरागिणी स्त्री का हो, या मृत्यु का हो, जिसके मन में लेश भी विह्वलता नहीं, जो पूर्णतया स्वस्थ है, वह महाशय मुक्त ही है । स्त्री / पुरुष या मृत्यु का संबंध देह के साथ है । विरागी तो देहातीत आत्मदशा की अनुभूति करता है, जिसमें केवल पूर्णता है । बाह्य सुखसाधन न उसमें कुछ सुधारतें है, ना ही शामिल करतें है । बाह्य दुःखों के निमित्त न उसका कुछ बिगाड़ सकते है, ना ही उससे कुछ चुरा सकते है । **अध्यात्मोनिषद्** यही बात करता है -

अखण्डानन्दमात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः ।

सुख का परम रहस्य है विराग

विरागी जानता है, कि 'अखण्ड आनन्द की पूर्णता ही मेरी आत्मा का स्वरूप है।' परमानन्द की यह अनुभूति जिसे प्रतिक्षण रोमांचित कर रही है, उसका रोम बाह्य पदार्थों से कैसे कंपित हो सकता है । भीतरी अलौकिक आत्मस्वरूप को जो निष्पलकतया देख रहा है, उसकी पलकें बाह्य रूप को देखने के लिये कैसे उंची हो सकती है ?...**वैराग्यस्य तदावधिः...**

रूपकोशा आज भी नाच रही है । रागी दु:खी है । विरागी सुखी है । हमें क्याँ होना, इसका निर्णय करने के लिये हम स्वतंत्र है ।

(मूल गुजराती से अनुवादित)

●●●

जीवन जीने की कला

धर्मोपनिषद्

नाँव नदी के पानी को चीरती हुई आगे जा रही है। सेठ सफर का आनंद ले रहे है। उस समय उन्हें कोइ खयाल आया। नाविक से पूछा - "तूँ कुछ पढ़ा-लिखा है या नहीं ? नाविकने भोले भाव से उत्तर दिया - "नहीं, मेरे लिये तो काला अक्षर भैंस बराबर है।" सेठने कहाँ - "तेरी पाँव जिंदगी पानी में गई। ठीक है, मगर तूँने कितना धन संचित किया है ?" नाविकने कहां - "मेरे पास तो फूटी कोड़ी नहीं है। मैं तो रोज कमाता हूँ और रोज खाता हूँ।" "अरे रे, तेरी तो आधी जिंदगी पानी में गई। पर यह तो बोल, कि तूँने शादी की है या नहीं ?"इस बार नाविक जरा सा हंस पड़ा..."सेठ, मेरे जैसे गरीब को कौन अपनी बेटी देगा ?" "ओह, तेरी पोनी जिंदगी पानी में गई।"

यह बात चल ही रही थी कि नाँव का एक हिस्सा टूट गया। पानी शीघ्र वेग से अंदर आने लगा। सेठ चकित होकर देखने लगे। नाविकने सेठ से पूछा - "सेठ ! आप को तैरना तो आता है ना ?" सेठने घबराहट के साथ जवाब दिया - "नहीं।" "तो आप की पूरी जिंदगी पानी में गई।"

फिर क्याँ हुआ, वह कहने की आवश्यकता नहीं है। बात केवल उस सेठ की नहीं, समाज की, देश की व दुनिया की है। आज व्यक्ति, स्पोकन इंग्लीश के क्लास भर भर के देशी या विदेशी इंग्लीश बोलने लगता है। छोटी-मोटी डिग्री पा लेता है। पैसे कमाने के तरीके सीख लेता है। फेर स्कीन वाली लड़की को चुन लेता है। पर जीवन में अनेक प्रकार के समंदर आते है, जिन्हें तैरना उनको आता ही नहीं। अतः परिणाम यही आता है, जो उस सेठ का आया था।

धर्मोपनिषद् जीवन जीने की कला सीखाता है। जीवन में आते समंदरों को तैरना सीखाता है। दुःख में हँसना सीखाता है। सुख में स्वस्थ रहना सीखाता है। प्रलोभनो के समक्ष अड़िग रहना सीखाता है। पारिवारिक प्रेम, शांति व विश्वास को बनाये रखना सीखाता है। और उस व्यक्तित्व का निर्माण करता है, जो व्यक्ति के अपने हित में तो

है ही, समाज के देश के एवं विश्व के प्रत्येक जीव के हित में है । धर्मोपनिषद् का हार्द भी यही है, कि जो चीज प्रत्येक जीव के हित में नहीं है, वह चीज व्यक्ति के हित में भी नहीं है । व्यक्ति का हित वही चीज कर सकती है, जिस चीज से समाज का शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य बना रहे, जिसमें देशद्रोह का अंश भी न हो, और जिससे विश्व के किसी भी जीव को कोई चोट न पहुँचती हो ।

जो चीज प्रत्येक जीव का हित नहीं करती, वह चीज व्यक्ति का हित भी नहीं करती ।

धर्मोपनिषद् के कर्ता कोई एक मनीषी नहीं है । यह एक मननीय संग्रह ग्रंथ है। जिसमें वेदों, पुराणों, आगमों, उपनिषदों, गीता, महाभारत, चाणक्यसूत्र, त्रिपिटक, ग्रंथसाहिब, संहिता व कबीरवचन से लेकर कुरान व बाईबल तक के धर्मशास्त्रो के संदर्भो को विषयानुसार प्रस्तुत किये गये है । संस्कृत, पाली, उर्दु आदि भाषा के इन संदर्भो को सब समज सके, उसके लिये प्रत्येक संदर्भ के साथ साथ ही उसका सरल हिंदी एवं इंग्लीश अनुवाद भी दिया गया है ।

भारत के एवं विश्व के अन्य देशों के भी सत्ताधीश तथा शिक्षामन्त्री यदि वास्तव में लोककल्याण करना चाहते है, तो उन्हें नर्सरी से लेकर कोलेज तक समग्र शिक्षा में **धर्मोपनिषद्** को पाठ्यपुस्तक के रूप में स्थान देना चाहिये ।

हर साल दशवी व बारहवी की परीक्षायें आती है और विद्यार्थीओं में डिप्रेशन से लेकर आत्महत्या तक की अनेक घटनायें बनती है । परिणाम के दिनों पर अनेकत्र १६/१८ साल के लड़के व लड़कीयों की स्मशानयात्रा नीकलती है । थोड़ी चहल-पहल, थोड़ा शोर, कुछ विचारणाये और फिर वही रफतार । परीक्षा-पद्धति को कैसे सरल बनाना उसकी तरह तरह की मंत्रणायें होती है, किन्तु परिस्थिति के मूल में जाने की सोच किसे आती है ?

बारहवी का एक छात्र परिणाम के दिन प्रातः भयानक डिप्रेशन का शिकार हो गया । कल्पनाओं के प्रवाह में आकर उसने आत्महत्या कर ली । परिवार के उपर मानों बीजली गिरी । करुण रुदन से सारी सोसायटी द्रवित हो गयी । शाम को परिवार के सदस्य स्मशान से घर वापस आये, तब घर पर कोई परिणाम की जानकारी दे गया था । आत्महत्या करनेवाले उस छात्र को ९१% आये थे ।

बात अफसोस की है, मगर हमें केवल अफसोस नहीं करना है, मूल में जाकर मंथन करना है । बारहवी में ९१% लाने वाले छात्र के लिये हम मान सकते है के उसने बारह साल तक अत्यंत निष्ठा से अभ्यास किया होगा, प्रत्येक क्लास में उस का परिणाम तेजस्वी रहा होगा, यतः सरकारने निश्चित किये हुए पाठ्यपुस्तकों का उसने श्रेष्ठ अभ्यास किया होगा । इतने अभ्यास के बाद भी यदि छात्र ऐसी चेष्टा करे, तो उसके लिये उस छात्र की ही क्षति समज़नी चाहिये ? या जो शिक्षा उसने पायी है, उसकी भी क्षति समजनी चाहिये ?

गृहकार्य, नौकरी आदि के दायित्व के साथ साथ जो माता-पिताने बारह / पंद्रह साल तक अपने संतानों को स्कुल तक ले जाने - वापस लाने के लिये परेशानीयों का सामना किया है, पसीने से कमाये हुए पैसों का व्यय किया है । स्कुल-ट्युशन्स-क्लासिस की कमरतोड़ 'फी' का बोजा उठाया है । अरे, अरबों रूपये से भी जिसका मूल्यांकन न हो सके, ऐसी संतानों की एक एक क्षण का विनियोग माता-पिताने जिस शिक्षा के लिये किया है, उन माता-पिताओं को शिक्षातंत्र क्यां सिला देता है ? करोड़ों मातायें प्रातः अपने प्यारे बेटे को कच्ची नींद से जगाती है, जल्दी जल्दी स्नान, नास्ता आदि प्रातःक्रम के कार्य कराती है, अत्यंत चिंता के साथ भाग-दोड़ करके स्कुल-बस का आगमन की क्षण पर बेटे को लेकर रोड़ पर पहुँच जाती है और बस का आदमी बेटे को दो सीढीयों उपर चड़ा दे, तब राहत का दम लेती है, पर लाख रूपये का प्रश्न यह है, कि क्याँ वास्तव में इसमें राहत मनाना जैसा होता है ? इतना कुछ करके अपनी आँखो के तारे जैसे बेटे को माता-पिता जिस शिक्षातंत्र को समर्पित कर देते है, उस शिक्षा-तंत्र को अपने दायित्व का कितना अहसास है ? वह शिक्षातंत्र जो शिक्षा दे रहा है, उसमें जीवनोपयोगी शिक्षा कितनी होती है ?

छात्र की आत्महत्या के लिये कौन जिम्मवार ? छात्र ? या उसे दी गयी निरुपयोगी शिक्षा ?

अनुत्तीर्ण होने से या अपेक्षित नंबर नहीं आने से एक किशोर जंतुनाशक दवाई पी जाता है । पर्सनल (!) जीवन में मम्मी के डिर्स्टबन्स (!) से एक कन्या सातवे मजले से कूद पड़ती है । सास के दो शब्द सहन न होने से नववधू शरीर पर केरोसीन डालकर जल जाती है । नौकरी की तलाश कर करके थका हुआ युवान ट्रेन की पटरी पर सो जाता है ।

जो शिक्षा जीवन की वास्तविकताओं का स्वीकार करने की सामान्य कला भी नहीं सीखा पायी है, उस शिक्षाने अपना दायित्व कितना निभाया है ? हाथ में पैसों के आते ही पुत्र पिता का भयानक अपमान करने लगे और घर में पत्नी के आते ही माता को पीडा देने लगे, तो यह कलंक पुत्र का ही है ? या उस के व्यक्तित्व का निर्माण करनेवाली शिक्षा का भी है ? वृद्धाश्रमों में अश्रु बहातें हुए माता-पिताओं ने कभी कल्पना की थी कि पुत्र को लायक बनाने के लिये हम उसे जिस शिक्षातंत्र को समर्पित कर रहे है, वह उसे इतना लायक (?) बना देगा, कि फिर पुत्र हमें ही नालायक समजने लगेगा ?

जो शिक्षाने शरीर के अंगो को पहचानना सीखाया, रोग के हेतुओं का परिचय कराया एवं दवाईयों के विषय में जानकारी दी, चिकित्सा की शैली भी सीखायी । किन्तु यह नहीं सीखाया कि गरीब मरीजों को लूँटना नहीं चाहिये । यह नहीं सीखाया कि अमीर मरीजों के साथ छल नहीं करना चाहिये । यह नहीं सीखाया कि अनावश्यक ऑपरेशन करके किसी के जीवन के साथ खेल नहीं खेलना चाहिये । यह नहीं सिखाया कि फिजूल व हानिकारक दवाई देकर किसी के स्वास्थ्य को खिलौना नहीं बनाना चाहिये । यह नहीं सीखाया कि अपने पर विश्वास रखकर जो स्त्री-मरीज अपनी केबिन में आयी है, उसके साथ अनैतिक व्यवहार करके उसका विश्वासघात नहीं करना चाहिये, तो फिर उस शिक्षाने समाज का कल्याण किया है ? या समाज का द्रोह किया है ? बड़े से बड़ा डॉक्टर भी नीच से भी नीच चेष्टा न करे, उस के लिये ऑपरेशन थियेटर में केमरा रखने का सरकारने जो आदेश दिया है, वह गौरव की बात है ? या शर्म की बात है ? क्याँ यह आदेश डॉक्टर की अविश्वसनीयता को साबित नहीं करता ? और एक सुशिक्षित डॉक्टर की अविश्वसनीयता सारे शिक्षातंत्र को अविश्वसनीय साबित नहीं करती ?

भ्रष्ट अस्पतालों के आई.सी.सी.यु. में कई दिनो तक वेन्टिलेटर से साँस लेते मुर्दों के जैसी लाखों शिक्षितो की स्थिति है । जिनमें साँस तो है, किन्तु संवेदनशीलता नहीं है। वे गरीबों का खून चूस सकते है, ग्राहकों के एवं क्लायन्टों के साथ बिना किसी हिचकिचाहट छल कर सकते है...किसी की कब्र पर अपना महल बना सकते है...किसी के अश्रु में 'नमक' की तलाश कर सकते है....किसी की चिता पर अपनी रसोई पका सकते है और कहने में भी लज्जा आये, ऐसे अक्षम्य अपराध कर सकते है ।

दोष उनका नहीं है, उन्हें दी गयी शिक्षा का है । एक कोमल बालक को जिस

समय जैसे मोड़ो वैसे मोड़ा जा सकता था, तब हमने उसे जीवनोपयोगी व समाजपयोगी शिक्षा न दी । उस पर व्यर्थ रट के बोजें डाल दियें । जिसका उसके सामाजिक या व्यवसायिक जीवन में कोई संबंध नहीं था, ऐसे विषयों का भार डाल दिया । बालक के जीवन के अमूल्य साल एक मदजूर की तरह इन बोजों को उठाने में बीत गयें । जो अति आवश्यक शिक्षा थी, उस का अवकाश ही न रहा, और दुसरी बाजू समाजविरोधी तत्त्वों ने नाना माध्यमों के द्वारा उस के क्रोध को उकसाया, उसे छल करना सीखाया, उसे पैसों के पीछे पागल बनाया, उस की हवस को भयानकतया भडकाया । परिणाम...हमारे सामने है ।

एक वृक्ष को उचित समय पर पानी न मिला । वह सूखने लगा । उस के पत्ते झरने लगे । अब उन सूखे पत्तो की शिकायत करके क्याँ फायदा ? अब उन पर सिंचन करने से क्याँ लाभ ? अब अवसर गया । हा, जिसका अवसर है, ऐसे वृक्ष के मूल में सिंचन करो, तो कुछ बात बने । आज भ्रष्टाचार, हिंसा व जातीय परेशानीयों से देश पीडित हो रहा है...हम शोर मचाते है...आन्दोलन करते है...तरह तरह के कानून बनाते है । किन्तु यह सब मुर्दे की चिकित्सा जैसा है । मुर्दा यदि तंदुरस्त हो सके, तो वह आनंद की बात है, पर जो जीवित है, जिसके लिये किया गया प्रयास सफल हो सकता है, जिसे जीवनोपयोगी शिक्षा देने के लिये करोडो का अर्थतंत्र एवं करोड़ों की स्थावर संपत्तियाँ है...लाखों शिक्षक नियुक्त किये गये है, उनकी उपेक्षा कैसे हो सकती है ? मूल में सिंचन न करना और फिर सूखे पत्ते को देखकर शोर मचाना, इसमें मूर्खता से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है ।

हमने अपने आप को दरिद्र समज लिया है, अतः हम सब कुछ पश्चिमी देशों से आयात करना चाहते है । इसी लिये हमारे पाठ्यपुस्तकों में से पितृभक्ति एवं भ्रातृभाव की अमूल्य शिक्षा देनेवाले रामायण के कुछ बचे हुए अंश भी अदृश्य होने लगे है और जेक एन्ड जील जैसे तत्त्वशून्य शब्दों के भूँसे प्रवेश करने लगे है । सत्ताधीशों के दिल में देश के मासूम बालकों का हित कितना बसा है, वह तो मुझे मालूम नहीं है, पर इस बात का मुझे पूर्ण विश्वास है, कि माता-पिता अपनी संतान के हित के विषय में कोई कोम्प्रोमाइज करना नहीं चाहते । 'फी' दे देकर जो माता-पिता अपने संतान को जिस शिक्षातंत्र को समर्पित करते है, उस शिक्षातंत्र से अपने संतान के सर्वांगीण विकास की अपेक्षा रखना, यह उन माता-पिता का पूरा अधिकार है । यदि माता-पिता जागृत होंगे,

तो सरकार अवश्य जागृत होगी। समझदार अध्यापक, विचक्षण आचार्य एवं हितेच्छु माता-पिता अल्प ही समय में समग्र देश का नवनिर्माण कर सकते है।

धर्मोपनिषद् भारत की स्वर्णिम प्राच्य समृद्धि है। आर्षद्रष्टा महापुरुषों का यह अणमोल उपहार है। समाज को स्वस्थ व तंदुरस्त बनाने के लिये यह आरोग्य-टोनिक है। संस्कारों की सुवास का प्रसारण करनेवाला यह परम पुष्प है। जीवन में पैसों से नहीं, गुणों से सुख मिलता है, आज भी विश्व में धनवान नहीं, किन्तु गुणवान ही सुखी है। **धर्मोपनिषद्** गुणों का प्रसार करने के लिये एक अच्छा माध्यम बन सकता है।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् - जो बर्तांव अपने आपको प्रतिकूल है, ऐसा बर्ताव दुसरों के प्रति मत करों यह एक सुवाक्य हज़ारो हत्याओं को रोक सकता है।

न पापं प्रति पापः स्यात्, साधुरेव सदा भवेत् - दुर्जन के प्रति भी दुर्जन न होना, पर हमेशा सज्जन ही रहना - यह एक सुनीति समाज में प्रेम व शांति का प्रसारण कर सकती है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् - सच बोलना, प्रियवचन बोलना, सच भी ऐसा मत बोलना, जिससे किसी को दुःख हो - यह एक सुभाषित अनेक झगड़ों से व विवादो से बचा सकता है।

मा हिंसीस्तन्वी प्रजाः - किसी भी जीव की हिंसा मत करो - यह एक सुवचन समस्त पर्यावरण को सुरक्षित कर सकता है।

अहिंसा परमो धर्मः - अहिंसा ही परम धर्म है - यह एक सुभाषित पक्षीय हुल्लड़ो व तूँफानों को रोक सकता है।

लोभः सर्वार्थबाधकः - लोभ सभी सिद्धिओ में बाधक है - यह एक सुवर्णवाक्य भ्रष्टाचार को समाप्त कर सकता है।

भुङ्क्ते स केवलं पापं, भुङ्क्ते यो ह्यतिथिं विना - वह केवल पाप ही खा रहा है, कि जो अतिथि के बिना भोजन कर रहा है - यह एक सुवचन देशप्रेम व भ्रातृभाव को जीवंत रख सकता है।

मातृवत् परदाराणि, परद्रव्याणि लोष्ठवत् - परनारी को माता के समान देखना व परधन को धूल के समान देखना - यह एक सुभाषित व्यभिचारों, अत्याचारों एवं चोरीयों

को दूर कर सकता है ।

मद्यं कारणमापदाम् - शराब आपत्तियों का कारण है - ऐसा एक वचन व्यसनमुक्ति का शंखनाद कर सकता है ।

पितरो देवाः - माता-पिता देवता के समान होते है - ऐसा एक सुवर्णवाक्य घर को स्वर्ग बना सकता है ।

इन्द्रियैर्नियतैर्बुद्धिर्वर्द्धते - इन्द्रियों को अंकुश में रखने से बुद्धि बढ़ती है - ऐसा एक सुभाषित समाज को शिष्ट तथा सुशील बनाये रखता है, साथ ही साथ वैज्ञानिक साधनों के दुरुपयोग को रोकता है ।

नास्ति क्रोधसमो रिपुः - क्रोध जैसा कोई दुश्मन नहीं है - ऐसा एक सुवचन मन की शांति दे सकता है एवं दुर्घटनाओं को रोक सकता है ।

दानं सब्बत्थसाधकम् - दान सर्व प्रयोजनों को सिद्ध करता है - यह एक सुभाषित देश में त्याग व समर्पण की भावना को जीवंत रख सकता है ।

यह तो केवल एक झलक है । संसार की ऐसी कोई समस्या नहीं है, जिसका समाधान इस आर्ष उपहार में न हो । ऐसा कोई सुख नहीं, जो इन वचनों के अनुसरण से न मिले । समाज की ऐसी कोई बुराई नहीं, जो इसकी शिक्षा से दूर न हो सके ।

सारा विश्व आज हिंसा के तांडव से पीडित हो रहा है...भ्रष्टाचार व दुराचार की दुर्गन्ध से व्याप्त हो रहा है । तेरह साल का बालक अपने पिता को रिवोल्वर से शूट कर दे व बारह साल की कन्या कँवारी माता बने, ऐसी घटनायें दुनिया के अनेकानेक शहरो में सामान्य बन गयी है । इस स्थिति में भारत को दुनियाँ की राह पर चल कर बरबाद होना चाहिये ? या अपनी प्राचीन संस्कृति के भव्य उपहार का आदर करके विश्वोद्धार के लिये अग्रेसर होना चाहिये ?

खून या जातीय अत्याचार की एक ही घटना पूरे दो परिवारों का सत्यानाश कर देती है । हवस की आग सुखी विवाहितजीवन के टुकड़े टुकड़े कर देती है । निरंकुश लोभ भयानक अनर्थो को आमंत्रित करता है । क्रोध का विस्फोट सारे घर को नर्क बना देता है । जिस के मन में ऐसे दोषों ने अपने घोंसले बनाये है, वह भले ही हाइ-एज्युकेटेड हो, भले ही उसके नाम के पीछे डिग्रीओं की लंबी लंबी पूँछ लगती हो, वास्तव में वह मूर्ख है । संत कबीर के वचन याद आते है -

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान ।
तब लग पंडित मूरख ही, कबीर एक समान ॥

सच्ची शिक्षा वह है, जो दोषों को दूर करे एवं सद्गुणों का आरोपण करे । जीवन को सुखी बनाने का केवल यही एक उपाय है ।

सच्ची शिक्षा वह है, जो दोषों को दूर करे एवं सद्गुणों का आरोपण करे । जीवन को सुखी बनाने के लिये केवल यही एक उपाय है । माता-पिताओं, अध्यापकों, आचार्यों तथा शिक्षामंत्रीओ को मिलकर व्यक्ति, समाज और देश के हित के लिये यह उपाय अपनाना चाहिये और उनकी हितेच्छुता को साबित कर देना चाहिये ।

(मूल गुजराती से अनुवादित)

●●●

समस्त युनिवर्सिटी, कॉलेज, स्कूल
एवं नर्सरी के
आचार्य - उप आचार्य एवं प्राध्यापकों से हमारी नम्र विज्ञप्ति है कि आप प्रतिदिन एक पिरियड या कम से कम प्रार्थना के साथ साथ **धर्मोपनिषद्** का अध्ययन हो ऐसा प्रबन्ध करें ।

आर्षविश्व
आचार्य कल्याणबोधि

सत्य का साक्षात्कार

आत्मोपनिषद्

अयोध्यानरेश की राजसभा पूर्णतया भर गयी है । क्रमशः एक के बाद एक राजकार्य चल रहा है । तब प्रतिहारीने आकर कहा, ''महाराज की जय हो । एक विद्वान् आप को मिलना चाहता है । कहता है, कि मैं नैमित्तिक हूँ, एक महत्त्वपूर्ण भविष्यवाणी करने आया हूँ । महाराज की अनुज्ञा से नैमित्तिक का आगमन हुआ । सम्मान के साथ उसे उचित आसन दिया गया । राजाने भविष्यवाणी के बारे में प्रश्न किया । विद्वान के मुख पर गंभीरता छा गयी । भविष्यवाणी सुनने के लिये सभा उत्सुक तो थी ही, विद्वान की गंभीरता को देखकर वह उत्सुकता और भी अधिक हो गयी । विद्वान ने कहा, 'राजन् ! कहने में संकोच हो रहा है, कहने पर शायद आप को विश्वास भी नहीं होगा, तथापि मेरा कर्तव्य समज कर कहने आया हूँ। आज से साँतवे दिन समंदर में भयानक तूँफान आयेगा, उसका पानी आँसमां को स्पर्श करेगा...और उस तूँफान में सारी दुनिया डुब जायेगी। केवल जल ही जल...और कुछ भी नहीं बचेगा ।''

राजसभा में सन्नाटा छा गया । मंत्रीश्वरने राजा के कान में कुछ कहा और राजाने आदेश दिया, ''पंडितजी ! सात दिन तक आप को हमारी नज़रकेद में रहना होगा । रोज राजसभा में उपस्थित होना होगा । और यदि साँतवे दिन आप की भविष्यवाणी के अनुसार नहीं हुआ, तो आप को मृत्युदंड दिया जायेगा ।'' विद्वानने पूर्ण स्वस्थता के साथ कहा, ''मुझे मंजूर है, यतः मुझे मेरे ज्ञान पर पूर्ण विश्वास है। जो होनेवाला है, वह होकर रहेगा।''

आज से साँतवे दिन समंदर में ऐसा तूँफान आयेगा, जिसमें सारी दुनिया डुब जायेगी ।

साँतवे दिन राजसभा में लोगों की भीड़ अपूर्व थी । सब दिल थाम कर बैठे है। सब के चहेरे पर चिंता भी है और कुतूहल भी । स्वस्थ है केवल वह विद्वान । राजाने प्रवेश किया । विद्वान ने गंभीर स्वर से कहा, ''राजन् ! देखिये, सृष्टि के इतिहास में कभी भी नही हुई, ऐसी घटना का प्रारंभ हो गया है । देखो, समंदर का तूँफान आ रहा है...गाँव

के गाँव उसमें डुब रहे है ।" राजा अवाचक बनकर देखता रहा...बड़ी बड़ी लहरीयाँ अंबर कों छूँ रही है...हजारो लोग व लाखो पशु डुब रहे है । उस तूँफान के जोर से घर गिर रहे है, वृक्ष उखड रहे है - "देखिये महाराज ! अब तो यह समंदर अयोध्या की सीमा में भी आ गया । देखो आप की प्रजा विवशतया डुब रही है....और अब तो...यह पानी राजमहल तक आ गया । देखो, राजसभा की सीडियाँ भी डुब गयी । राजन् ! जान बचानी हो तो उपर के मजले..." राजा दोड़े...पहला मजला...दुसरा...तीसरा...राजा की गति तेज है, तो पानी की गति भी कुछ कम नही...दुनियाभर का मौत का हाहाकार राजा के कानों में गुंज रहा है...पानी केवल चार सीडी ही पीछे है...चौथा मजला... पांचवा... छठवा...साँतवा...और अब तो उपरितल आ गया । वहा से जो दृश्य देखा, उस से राजा को चक्कर ही आ गया । चारों ओर आकाश को छूँ रहा पानी...बस दो-चार पल...और सब कुछ एक...राजा उपरितल की सीमा तक पहुँचे है, ओर कोई चारा न देखकर पानी में कूदने ही जा रहे है, तब उनको सुनाई दिया - "रुको महाराज ! आप क्यां कर रहे हो ?"

राजाने देखा, तो स्वयं राजसभा में राजसिंहासन पर ही है । पानी का कोई नामोनिशान नहीं है । राजा अत्यंत विस्मय से चारों ओर देख रहा है, तब उस विद्वानने विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा, "क्षमा करना राजन् ! मैं नैमित्तिक नहीं, पर इन्द्रजालिक हूँ । मेरी कला दिखाने के लिये मैंने यह प्रयोग किया था । राजा एक विस्मय से बाहर आये, उससे पहले दुसरे विस्मय के प्रभाव में आ गये । मंत्रीश्वर के कहने पर राजाने उस विद्वान को क्षमा दी, और उसकी कला का उचित सम्मान किया ।

भारत की प्राच्यविद्या की एक लुप्त कला है इन्द्रजाल । आज के मनोरंजन के साधन पानी भरें, ऐसी वह अद्भुत कला थी । किन्तु यहाँ जो बात करनी है, वह मनोरंजन के परिप्रेक्ष्य में नहीं, पर अध्यात्म के परिप्रेक्ष्य में है । राजा का विस्मय, उनकी चिंता, उनका भय, उनकी दौड़...इन सब का हेतु क्याँ था ? समंदर का तूँफान ? नहीं, वह तो था ही नहीं ।"

हमारे पूर्व महर्षिओं ने इन्द्रजाल की इस घटना के समांतर ही समस्त संसार के हेतु का चिंतन किया है, जिस चिंतन का नवनीत **आत्मोपनिषद्** नाम के ग्रंथ में उपलब्ध होता है-

सत्यत्वेन जगद्भानं, संसारस्य प्रवर्तकम् ।
असत्यत्वेन भावं तु, संसारस्य निवर्तकम् ॥

जगत सत्य है, ऐसी प्रतीति संसार का हेतु है। जगत असत्य है, ऐसी प्रतीति संसार की निवर्तक बनती है।

आत्मोपनिषद् की रचना अज्ञात पूर्व महर्षिने की है। इस ग्रंथ का संबंध **अथर्ववेद** से है। संस्कृत भाषा में रचित इस ग्रंथ में 'अनुष्टुप्' छंदमय श्लोक भी है, और गद्य-अंश भी, जिसका कुल प्रमाण ४३ श्लोक जितना है। **आत्मोपनिषद्** का तत्त्व जितना गहन है, उतना ही प्रभावशाली है, समज़ने का प्रयास करें, तो अति सरल भी है।... **सत्यत्वेन जगद्भानम्...**राजा घबराया और दौड़ा, यतः जो सत्य नहीं था, उसे उसने सत्य मान लिया था। सारे जगत की सर्व चेष्टा - हर्ष, शोक, हास्य, रुदन, भय, कंप, दौड़ इन सब का हेतु भी यही है।

यहाँ तर्क हो सकता है, कि 'इन्द्रजाल असत्य थी, पर जगत तो सत्य है।' ठीक है, आधी बात तक तो पूर्वमहर्षि और हम साथ साथ ही खड़े है। अब सोचो, इन्द्रजाल असत्य क्यों ? गलत है इस लिये ? तो गलत कैसे ? जो दिख रहा है, सुनाई दे रहा है, जिसका अनुभव हो रहा है, वह गलत कैसे हो सकता है ? आखिर में तो यही कहना पड़ेगा कि जो देखा-सुना-अनुभव किया, बाद में उनमें से कुछ भी नहीं था, अतः वह गलत था।

छोटा बच्चा फिल्म या नाटक के करुण दृश्य देखकर रोता है, तब उसकी माँ उसे समजाती है - बेटा ! तूँ रो मत। यह सब गलत होता है। फिल्म में नायक की मृत्यु देखी-सुनी-अनुभव की, किन्तु वह झूठ है। यतः केमरे की स्विच ऑफ हो, फिर वैसा होता नहीं है। इन्द्रजाल हो या फिल्म हो, नाटक हो या स्वप्न हो, वह सब झूठ है, यतः फिर वैसा होता नहीं है। सृष्टि का यह सर्वसम्मत सत्य है, कि जो स्थिर नहीं, वह सत्य नहीं।

जो स्थिर नहीं, वह सत्य नहीं।

अब इसी नाँप से जगत को व जीवन को नाँपना है। क्यां जगत सत्य है ? जैसे स्वप्न स्थिर नहीं, वैसे जगत भी स्थिर नहीं। जैसे इन्द्रजाल में दिखाई देती चीज़ हमेशा के लिये नहीं होती, उस तरह जगत भी हमेशा के लिये नहीं होता। जैसे नाटक का अंत है, वैसे हम से संबंधित जगत का भी अंत है। जैसे केमरे की स्विच ऑफ होते ही फिल्म का दृश्य बदल जाता है, उस तरह श्वास की स्विच ऑफ होते ही जीवन का दृश्य बदल जाता है। **पंचसूत्र** में कहा है - सुविणु व्व सव्वमालमालु त्ति - जैसे स्वप्न सत्य नहीं

है, वैसे जगत भी सत्य नहीं है ।

अज्ञानी की दशा बालक जैसी है । जो झूठ है, उसे वह सत्य समजता है,अतः वह क्लेश एवं संक्लेशों से पीडित होता है...चिन्ता व भय से दुःखी होता है । दौड़ता है और घुट घुट कर रोता है । उपनिषद् के महर्षि एक माँ की भाँति उसे कहते है, "वत्स ! तूँ रो मत, यह सब झूठ होता है । जो झूठ है, उसे तूँने सत्य समज़ लिया है, यही तेरे दुःखमय संसार का मूल है ।" इस पार्श्वभूमि पर स्पष्ट हो रहा है **आत्मोपनिषद्**–

सत्यत्वेन जगद्भानं संसारस्य प्रवर्तकम्

पुत्रमृत्यु का आघात वज्राघात बने, उसके मूल में अकस्मात् नहीं होता, पर नाटक के पात्र की तरह जो व्यक्ति हमारे जीवन में अल्पकाल के लिये आया है, उसके संबंध को शाश्वत सत्य समज लेने की भूल होती है । दुःख आता है कर्म से, कर्मबन्ध होता है राग-द्वेष से, और राग-द्वेष का मूल यही है – **सत्यत्वेन जगद्भानम्** – जगत को सत्य समजने की भूल...अस्थिर को स्थिर समजने की भूल ।

जापान की एक कहावत है – Don't carve on ice or paint on water. बर्फ के उपर शिल्पकाम या पानी के उपर चित्रकाम मत करों । फ्लोरा फाउन्टेन के ट्राफिक और भीड़ के बीच कोई चिंटी मिट्टी का कण कण लेकर रोड के बीचोबीच अपना घर बनाने का प्रयास करे, ऐसी अज्ञ जीवों की चेष्टा है । उस चींटी की घर बनाने की चेष्टा, चोपाटी की रेत में किसी बच्चे की घर बनाने की चेष्टा और किसी बिझनेशमेन की आलिशान बंगला बनाने की चेष्टा....ज्ञानी की दृष्टि में यह तीनों चेष्टायें एक समान है **योगदृष्टिसमुच्चय** में कहा है –

बालधूलिगृहक्रीडा-तुल्याऽस्यां भाति सर्वदा ।
तमोग्रन्थिविभेदेन, भवचेष्टाऽखिलैव हि ॥

जब आत्मा को स्थिरा दृष्टि प्राप्त होती है, तब उसकी अज्ञान ग्रंथि कट जाती है, फिर संसार की सारी चेष्टायें उसे ऐसी लगती है, मानों एक बच्चा धूल में घर बना रहा हो । बच्चे को मोह है, ममत्व है, आनंद का आभास है, 'घर बन गया'-ऐसा हर्ष भी है, किन्तु समज़दार की दृष्टि में उसका क्यां मूल्य ? पवन की लहरी या किसी बेध्यान आदमी की लात उस घर को एक ही पल में नष्ट-भ्रष्ट कर देते है, और फिर वह बच्चा जोर जोर से रोता है । नश्वर के प्रति मोह का परिणाम अश्रु ही होता है ।

दुनिया दुःखी है, यतः उसे बिजली के चमकारे से दिवाली मनानी है ।

आचारांगसूत्र में कहा है - **भेउरेसु ण रज्जेज्जा** - जो स्थिर नहीं, उस से स्नेह करने में कोई लाभ नहीं है । दुनिया दुःखी है, यतः उसे बिजली के चमकारे से दिवाली मनानी है, जो संभव ही नहीं है । अनादि की इस यात्रा में ५-२५-५० साल के संबंधो का अस्तित्व क्यां ? वे जितने है उससे अधिक तो वे 'नहीं है' । समजदारी इसमें ही है, कि मान ले कि वे नहीं है...**असत्यत्वेन भानं तु...**बस...फिर सारे राग-द्वेष भी समाप्त और दुःखमय संसार भी समाप्त...**संसारस्य निवर्तकम्** ।

समंदर का तूँफान इन्द्रजाल है, इस समज से राजा शांत हो गये । संसार इन्द्रजाल है, यह समज आ जाये, तो आत्मा भी शांत हो जाये...पूर्णतया शान्त...जिसे न धनसंचय करना है...न भोग-उपभोग करना है...न भाग-दौड़ करनी है...न कोई चिन्ता है...न कोई भय है...न कोई शोक है...ना ही कोई खिटपिट है । परम शान्ति की यह दशा तो ही 'मोक्ष' है । अब **आत्मोपनिषद्** में किसी भी आशंका का अवकाश नहीं है - **असत्यत्वेन भानं तु संसारस्य निवर्तकम् ।**

अज्ञानी को मृगजल में भी जल दिखाई देता है । ज्ञानी को जल में भी मृगजल दिखाई देता है ।

जिस चीज के लिये अज्ञानी खिटपिट करता है, वह चीज ज्ञानी की समज के अनुसार है ही नहीं, तो वह किस के लिये खिटपिट करे ? अज्ञानी को मृगजल में भी जल दिखाई देता है । ज्ञानी को जल में भी मृगजल दिखाई देता है । दौड़ता है वह, जिसे जल दिखता है । जिसे स्पष्टतया मृगजल ही दिखता है, वह क्यों दौड़े ? वह तो केवल शान्त रहता है । **इन्द्रजालमिदं सर्वं यथा मरुमरीचिका**

इस जीवन की सफलता भाग-दौड़ करने में नहीं है, शान्त होने में है । विद्वानने जो शब्द राजा को कहे थे, वही शब्द उपनिषद् के महर्षि हमें कह रहे है, ''रुको, तुम क्यां कर रहे हो ?'' जरा रुकें, सुनें व समजे...फिर शांति की वरमाला हमारे गले में होगी ।

●●●

आर्षविश्व
आचार्य कल्याणबोधि

आहार मीमांसा

विश्व के धर्मों की दृष्टि में

विश्व के सर्व धर्मोंने जीवमात्र में परमात्मा की झलक देखने को कहा है एवं अहिंसा का परम धर्म के रूप में स्वीकार किया है । आहार के लिये भी किसी जीव की हिंसा नहीं करनी चाहिये, इस बात पर सर्व धर्म एकमत है । अधिकांश धर्मो ने तो विस्तारपूर्वक मांसाहार के दोष बतायें है और कहा है कि मांसभक्षण से आयुष्य का क्षय होता है एवं पतन होता है । यदि कोई भी व्यक्ति ऐसा मानती है कि मेरे धर्म में मांसाहार का निषेध नहीं है, तो वह उसका भ्रम है । चलों देखें, कि आहारामीमांसा के विषय में विभिन्न धर्मदृष्टियाँ क्याँ कहती है ?

(१) **हिन्दु धर्म** - सर्व जीव ईश्वर के ही अंश है । अहिंसा, दया, प्रेम, क्षमा आदि गुण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । मांसाहार अत्यंत त्याज्य है व दोषपूर्ण है । मांसाहार करने से आयुष्य का क्षय होता है । **अथर्ववेद** (८-६-२३) में कहा है -

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये कविः ।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥

जो कच्चा या पक्का मांस खाते है, जो अण्डें खातें है, उनका यहाँ से हम नाश करते है । **ऋग्वेद** में भी शाकाहार को सर्वोत्तम तथा मांसाहार को घृणित आहार निरूपित किया गया है । **महाभारत** के अनुशासन पर्व में कहा है, कि मांस खानेवाले, मांस का व्यापार करनेवाले व मांस के लिये जीवहत्या करनेवाले - तीनों दोषी है । मांसाहारी जहा कहीं भी जन्म लेता है, वह चैन से नहीं रह पाता । **मां स भक्षयिताऽमुत्र** - 'मांस' का अर्थ है - जिसका मांस मैं खा रहा हूँ, वह परलोक में मुझे खायेगा ।

भगवद्गीता में कहा है कि मांसाहार कुसंस्कारों की ओर ले जाता है, बुद्धि को भ्रष्ट करता है, रोग व आलस्य आदि दुर्गुण देता है ।

जो कच्चा या पक्का मांस खाते है, जो अण्डें खाते है, उनका हम यहां से नाश करते है । - अथर्ववेद

(२) **ईसाई धर्म** - ईसा मसीह को जान दिबैपटिस्ट से ज्ञान प्राप्त हुआ था, जो

मांसाहार के सख्त विरोधी थे । ईसा मसीह की शिक्षा के दो प्रमुख सिद्धान्त है –

Thou shall not kill.

तुम जीवहत्या नहीं करोगे ।

Love thy neighbour

अपने पड़ोसी से प्यार करें ।

गास्पल ऑफ पीस ऑफ जीसस क्राइस्ट में ईसा मसीह के वचन इस प्रकार है – ''सच तो यह है, कि जो हत्या कर रहा है, वह असल में अपनी ही हत्या कर रहा है । जो मारे हुए जानवर का मांस खाता है, वह असल में अपना मुर्दा अपने आप ही खा रहा है । जानवरों की मौत उसकी अपनी मौत है, क्योंकि इस गुनाह का बदला मौत से कम हो ही नहीं सकता । यदि तुम शाकाहारी भोजन को अपना आहार बनाओगे, तो तुम्हें जीवन व शक्ति मिलेगी, लेकिन यदि तुम मृत (मांसाहार) भोजन करोगे, तो वह मृत आहार तुम्हें भी मार देगा । क्योंकि केवल जीवन से ही जीवन मिलता है । मौत से हमेशा मौत ही मिलती है ।

जानवरों की मौत उसकी अपनी मौत है, क्योंकि इस गुनाह का बदला मौत से कम हो ही नहीं सकता । Thou shall not kill - तुम जीव हत्या नहीं करोगे । – ईसा मसीह

(३) **शिन्तो धर्म** – इस धर्म के अनुयायी जापान में बसे हुए है । इस धर्म की मान्यता है कि 'जो लोग दया करते है, उनकी आयु बढ़ती है ।'

(४) **ताओ धर्म** – इस धर्म के अनुयायी चीन तथा एशिया में बसे हुए है । इस धर्म की मान्यता है कि तमाम क्रियाओं की प्रतिक्रियाएँ होती है ।

If you kill, you will also be killed.

यदि तुम हत्या करोगे, तो तुम्हारी भी हत्या की जाएगी ।

(५) **कन्फूशस धर्म** – इस धर्म के अनुयायी चीन, जापान, बर्मा और थाईलैंड में बसे हुए है । इस धर्म की मान्यता है कि मांसाहार का त्याग धर्म की परिपूर्णता है।

(६) **पारसी धर्म** – इस धर्म के ग्रंथ जेन्द अवेस्ता में कहा गया है कि जीवों का वध अधार्मिक है ।

(७) **सिख धर्म** – गुरु नानक देव ने मांसाहार का साफ शब्दों में विरोध किया

है और कहा है कि जिस खून के लगने से कपड़ा गंदा और अपवित्र हो जाता है, उसी रक्त को मनुष्य पीता है तो फिर उसका मन निर्मल कैसे बना रह सकता है ?

जे रत लागे कापड़े, जामा होई पलीत ।

ते रत पीवे मानुषा, तिन क्यूं निर्मल चीत ? ॥

दारु कोई नाही खाणा ।
मास मछली पिआज नाही खाणा ।
चोरी जारी नाही करणी ॥ गुरु साहिब

गुरु साहबानों ने स्पष्ट रूप से हिंसा न करने का आदेश दिया है और जब हिंसा ही मना है, तो मांस-मछली खाने का सवाल ही नहीं उठता । शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटीने गहरी खोज के बाद जो गुरु साहिब के निशान तथा हुक्म नामें पुस्तक के रूप में छपवाये है, उनमें से एक हुक्मनामा यह है -

हुक्म नाम नं. ११३

हुक्मनामा बाबा बन्दा बहादुर जी

मोहर फारसी

देगो तेगो फतहि नुसरत बेदरिंग

याफत अज नानक गुरु गोबिन्द सिंह

१ ओ फते दरसनु

सिरी सचे साहिब जी दा हुक्म है सरबत खालसा जउनपुर का गुरु रखेगा...खालसे दी रहत रहणा **भंग तमाकू हफीम पोस्त दारु कोई नाही खाणा मास मछली पिआज नाही खाणा** चोरी जारी नाही करणी ।

अर्थात् मांस, मछली, पिआज, नशीले पदार्थो, शराब इत्यादि की मनाही की गई है । सभी सिख गुरुद्वाराओं में लंगर में अनिवार्यत: शाकाहार ही बनता है ।

(८) **बौद्ध धर्म** - इस धर्म के पंचशील अर्थात् सदाचार के पाँच नियमों में प्रथम व प्रमुख नियम किसी प्राणी को दु:ख न देना, अहिंसा ही है । धम्मपद (पृ० २०) में कहा है -

सव्वे तसन्ति दंडस्स, सव्वे भायन्ति मच्चुनो ।

अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये ॥

जैसे मुझे पीडा पसंद नहीं है, उस तरह अन्य जीवों को भी पीडा पसंद नहीं है। जैसे मुझे मृत्यु का ड़र लगता है, उस तरह सर्व जीवों को भी मृत्यु का डर लगता है। ऐसा सोचकर सभी जीवों को अपने समान समजे। न किसी को मारे, न मरवावे।

लंकावतार सूत्र में सभी जीवों को अपने बच्चों के समान प्यार करने का निर्देश है। और कहा गया है कि बुद्धिमान व्यक्ति को आपत्काल में भी मांस खाना उचित नहीं है। वही भोजन उचित है, जिसमें मांस व खून का अंश नहीं हो। गौतम बुद्धने स्पष्ट कहा है कि मांस म्लेच्छों का भोजन है। दुर्गन्धमय व अभक्ष्य है।

(९) **यहूदी धर्म** - यह धर्म भी अहिंसा का पक्षधर है। इस धर्म में उन लोगों को हेय बताया गया है, जिनके हाथ खून से रंग हुए है। बाइबिल में स्पष्ट बताया गया है कि 'तुम मेरे लिए सदैव एक पवित्र आत्मा होओगे, बशर्ते तुम किसी का मांस न खाओ।' यह धर्म न्याय, दया और विनम्रता की शिक्षा देता है। जब कि मांसाहार इन तीनों का विरोधी है। इसी लिये बाइबिल में यहाँ तक कहा है कि -

Keep away from those who consume meat and intoxicants for they will be deprived of everything and will eventually become beggers.

शराब और मांस का सेवन करनेवालों की संगत कभी न करो, क्योंकि ऐसे लोग विपत्तियों के शिकार बनते है, वे याचक बन जाते है। जीसस ख्रिस्तने यह भी कहा है कि

I say unto all who disire to be my disciples, keep your hand away form bloodshed & let no flesh meat enter your mouth, for God is just & bowntiful who ordaineth that man shall live by fruits, grains & seeds of the earth alone.

मेरे शिष्यों, तुम रक्त बहाना छोड दो, और अपने मुंह में मांस मत डालो। ईश्वर बड़ा दयालु है। उसकी आज्ञा है कि मनुष्य पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले, फल और अन्न से जीवन निर्वाह करे।

(१०) **इस्लाम धर्म** - इस धर्म में दया की बड़ी महिमा है। पैगम्बर मुहम्मद साहब पवित्र ग्रंथ हदीस में अपना कलमा फरमाते है -

इरहमु मनफिल अर्दे यरहम कुमुर्रहमानु

दुनियांवालों पर तुम रहम करो क्योंकि खुदाने तुम पर बडी मेहरबानी की हैं।

कुरान शरीफ में सूरे बकर में हज के वर्णन में लिखा है – जानवरों को मारना और खेती को तबाह करना जमीन में खराबी फैलाना है और अल्ला खराबी को पसंद नहीं करता –

वैजा तवल्ला साआ फिर अरदे लयुक सिद फीहा ।
व युह लिकल हरसा बन्नस्ल वल्लाहो ला युहिबुल फसादा ॥

यदि कोई इन्सान किसी बेगुनाह चिड़िया तक को भी मारता है, तो उसे खुदा को उसका जवाब देना होगा ।
– हजरत मोहमम्द साहब

कुरान में यह भी कहा गया है, कि जो सब पर रहम करता हैं, वह रहीम हैं । अतः सभी प्राणियों पर दया करो । खुदाताला जरराह (एक छोटी चिंटी या छोटी रेत का तिनका) जितना जुलम भी किसी के उपर चाहते नहीं (निसाआकी ४० वी आयात) । लंदन मस्जिद के इमाम अल हाफिज बशीर अहमद मसेरीने अपनी पुस्तक – 'इस्लामिक कंसर्न अबाउट एनीमल्स' में मजहब के हिसाब से पशुओं पर होनेवाले अत्याचारों पर दुःख प्रकट करते हुए पाक कुरान मजीद व हजरत मोहम्मद साहब के कथन का हवाला देते हुए किसी भी जीव जन्तु को कष्ट देने, उन्हें शारीरिक या मानसिक प्रतारणा देने, यहाँ तक कि पक्षियों को पिंजरों में कैद करने तक को भी गुनाह बताया है । उनका कथन है कि इस्लाम तो पेड़ो को काटने तक की भी इजाजत नहीं देता । इमाम साहब ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १८ पर हजरत मोहम्मद साहब का कथन इस प्रकार दोहराया है – 'यदि कोई इन्सान किसी बेगुनाह चिड़िया तक को भी मारता है, तो उसे खुदा को इसका जवाब देना होगा। और जो किसी परिन्दे पर दया कर उसकी जान बख्शता है, तो अल्लाह उस पर कयामत के दिन रहम करेगा ।

इमाम साहब स्वयं भी शाकाहारी है व सबको शाकाहार की सलाह देते है ।

(११) **जैन धर्म** – इस धर्म में समग्र विश्व में व्याप्त जीवों का छह प्रकारों में विभाजन किया गया है । जिस में मनुष्य से लेकर चिंटी व पृथ्वी-जल आदि तक के जीवों की रक्षा का सूक्ष्म उपदेश दिया गया है । अहिंसा इस धर्म का मुख्य सिद्धान्त है। किसी को ऐसे वचन कहना जिससे वह पीडित हो या किसी का बुरा सोचना, उसे भी इस धर्म में हिंसा बताया गया है । इस धर्म में जहां जानवरों को बांधना या अधिक भार लादना तक पाप माना जाता है, वहाँ मांसाहार का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता । **योगशास्त्र** में कहा है –

नरकाध्वनि पाथेयं कोऽश्नीयात् पिशितं सुधीः ?

मांस तो नर्क के पथ का पाथेय है, कौन बुद्धिमान उसे खाना चाहेगा ?

इस प्रकार हम देख सकते है, कि सभी धर्मो ने जीवदया का उपदेश दिया है और मांसाहार का निषेध किया है । कल्याण के अभिलाषीओं का कर्तव्य है कि इस उपदेश का दृढतापूर्वक अनुसरण करें ।

(कृपया इस लेख का पेम्पलेट / पोस्टर के रूप में प्रचार करें ।)

●●●

आरोग्यविद्या
आचार्य कल्याणबोधि

क्याँ खाना ?

वेज ? या नोनवेज ?

वैज्ञानिक द्दष्टि से भोजन विचार

विज्ञान कहता है कि किसी भी व्यक्ति को अपने अनुरूप भोजन की पसंदगी करने के लिये अपनी प्रकृति व शरीररचना का विचार करना चाहिये। मनुष्य के विषय में विचार करें, तो उसके दांत मांसाहारी प्राणीओं के दांत से बिल्कुल नहीं मिलते। मनुष्य के बीच के दो दांत शेष दांतो के साथ एक ही कतार में होते है। परन्तु मांसाहारी जीवों के आगेवाले जो बड़े दो दांत होते है, वे दुसरे दांतों से बड़े तेज नुकीले ओर आगे की तरफ नीकले होते है। उनके पंजे-नाखून तेज होते है। उनके जबड़े सिर्फ ऊपर नीचे चलते है। वे अपना आहार निगलते है। उनकी जीभ खुरदरी होती है। वे जीभ से पानी पीते है। उनकी आंते छोटी होती है। उनका जिगर / उनके गुर्दे अपेक्षाकृत बडे होते है। उनकी लार में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल होता है। मनुष्य की शरीररचना इससे बिल्कुल अलग है। उसकी शरीररचना शाकाहारी प्राणीयों से मिलती है। शाकाहारी प्राणीओं के दाँत व नाखून नुकीले नहीं होते। उनके जबड़े सभी दिशाओं में चलते है। वे अपना आहार चबाते है। उनकी जीभ चिकनी / स्निग्ध होती है। वे होठ से पानी पीते है, उनकी आँते बड़ी होती है। उनका जिगर और उनके गुर्दे छोटे होते है। उनकी लार में क्षार (अल्केलाइन) होता है।

प्रकृतिने स्वयं मनुष्य को शाकाहारी अस्मिता प्रदान की है। उसने उसके शरीर की रचना भी तदनुरूप की है। यदि मनुष्य अपनी प्रकृति व शरीररचना से विपरीत भोजन लेता है, तो उसके शरीर पर दुष्प्रभाव पडेगा ही। तो चलों, अब देखते है, कि विश्व के प्रतिष्ठित विज्ञानी एवं डॉक्टर अपने संशोधन एवं अनुभव से क्यां कहते है ?

- **डॉ. किंग्स्फोर्ड और हेग** - मांस खाने से दांतों को हानि पहुँचती है, संधिवात हो जाता है। इतना ही नहीं मांसाहार से क्रोध उत्पन्न होता है, जो अनेक रोगों का कारण है।
- **डॉ. जोशिया आल्ड फील्ड** (D.C.M.A., M.R.C., L.R.C.P., सिनियर

फिजीसियन मारगेरेट हास्पिटल ब्रामले) – मांस अप्राकृतिक भोजन है । इसीलिए शरीर में अनेक उपद्रव करता है । मांसाहारी लोग केन्सर, क्षय, ज्वर, पेट के कीडे आदि भयानक रोगो से अधिक पीडित होते है । इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मांसाहार उन भयानक रोगों के कारणों में से एक कारण है, जो १०० में से ९९ को सताते है ।

- **सिलपेस्टर, ग्रेंहम, ओ. एस. फौल्डर, जे.एफ न्यून, जे० स्मिथ डा. ओ.ए. अलक्ट हिडकलेन्ड, चीन, लेम्ब वकान, ट्रजी, ओलास, पेम्बरटर्न, हाईटेला** इत्यादि कई डाक्टरों, प्रवीण चिकित्सकों ने अनेक दृढतर प्रमाणों से सिद्ध किया है कि मांस–मछली खाने से शरीर अनेक रोगों का घर बन जाता है । यकृत, यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, मृगी, पादशोथ, वातरोग, संधिवात, नासूर, क्षयरोग आदि रोग उत्पन्न होते है । उन्होंने प्रत्यक्ष देखा है कि मांस–मछली खाना छोड देने से मनुष्य के उत्कट रोग समूल नष्ट हो जाते है व वे हृष्ट–पुष्ट हो जाते है ।
- **डॉ. एस. ग्रहेमन, डब्ल्यू एस. फूलर, डॉ. पार्मली लेम्ब, क्यानिस्टर बेलर, जे. पोर्टर, ए.जे.नाइट और जे. स्मिथ** इत्यादि डॉक्टर स्वयं मांस खाना छोड़ देने पर यक्ष्मा, अतिसार, अजीर्णता और मृगी रोगो से विमुक्त होकर सबल और परिश्रमी हुए है । इसी प्रकार उन्होंने अन्य रोगियों को मांस खाना छुडाकर अच्छा तंदुरस्त किया है एवं कई डाक्टरों ने अपने परिवार में मांस खाना छुडा दिया है ।
- **डॉ. केलोग** – विज्ञान की दृष्टि से तपास करने पर सिद्ध हुआ है कि यह बात बिल्कुल झूठ है कि 'गाय का मांस शक्ति प्रदान करता है' । वास्तव में मांसाहार निर्बलता का शिकार बनाता है और उससे जो नाइट्रोजीनस पदार्थ उत्पन्न होता है, वह स्नायुजाल पर जहर का काम करता है ।
- **डॉ. डौग्लास मेकडोनाल्ड** – मांसाहार से युरीक एसिड की वृद्धि होती है, यतः नासूर का दर्द लागू होता है ।
- **डॉ. विलियम्स रोबर्ट** (मिडले सेक्स केन्सर अस्पताल) – मांसाहार से इस रोग की वृद्धि आंकडों से साबित हुई है ।
- **डॉ. सर जेम्ब सोयर** (M.D.F.R.C.P.) - मेरे गहरे अनुभव के बाद यह सिद्ध हुआ है कि इंग्लेंड में मांसाहार के बढने से नासूर का दर्द फैला है ।

- **डॉ. हेग** - धान्य, फल, शाक के आहार से रोग होता ही नहीं ।
- **डॉ. लीओनार्ड विलियम्स** - ८५ % मांसाहारी प्रजा गले की बीमारियों व आंतों की व्याधियों से दु:ख पा रही है । उसका मूल कारण उनका मांसाहार ही है ।
- **प्रोफेसर कीथ** - मांसाहार से दाँत, गला व नाक के दर्द उत्पन्न होते है ।
- **डॉ. पोल कार्टन** - मांस की खुराक डीस्पेसिया एपेन्डी साइटीस आदि दर्दो को उत्पन्न करने में अग्रतम स्थान रखती है । टाईपोर्ड संग्रहणी इत्यादि दर्दों को बढाता है और क्षय एवं नासूर सद्दश प्राणघातक दर्दों के जन्तुओं को प्रविष्ट होने में सहायक होता है ।
- **डॉ. कोझन्सबेली** - पशु पक्षियों के मांस में एपेन्डी साइटीस के जन्तु होने से शरीर में रहे हुए मांस को इस रोग का चेप लगता है ।
- **डॉ. पोल कार्टन** - मांस की खुराक टाइफाइड जैसे रोग के विषैले जन्तुओं के लिये बहुत ही अनुकूल है ।
- **डॉ. एच. एस. ब्रुअर** - मांस खाने वालों की नसें एवं घोरी नसें भर जाती है और पतली पड जाती है । अत एव उनको कम / ज्यादा बुखार सताता रहता है ।
- **डॉ. बोन नुरडन** - मांसाहार से लिवर, किडनी और ऐसे ही दुसरे भागों को अधिक बोझ होता है, और इस से सन्धिवात व लिवर तथा किडनी संबंधी अन्यान्य दर्द उत्पन्न होते है ।
- **डॉ. पार्कर** - सब मांस खाने से गाइड, सन्धिवात और किडनी के दर्द उत्पन्न होते है ।
- **डॉ. सेवेजे** - पागलपन की बीमारी मांसभक्षी लोगों में ही विशेष पाई जाती है।
- **डॉ. डेविड पोटर्टन** - मांस को आँतो से गुज़रने में ३ से ४ दिन लग सकते है, जबकि तन्तु-समृद्ध (फायब्रस) शाकाहार २४ घंटो में ही अपनी आन्तयात्रा संपन्न कर लेता है । अत: शाकाहारी व्यक्ति पश्चिम जगत की तमाम विकारमूलक (डीजेनरेटिव्ह) बीमारियों से बच जाता है ।
- **अमरीकी फूड एन्ड न्यूट्रीशन बोर्ड**-नेशनल रिसर्च कौंसिल - अधिकांश पोषण विज्ञानी इस तथ्य से सहमत है कि यथोचित शाकाहार स्वयं में संपूर्ण / पर्याप्त

आहार है । दुनिया के प्रायः सभी मुल्कों में शुद्ध शाकाहारियों ने अपना स्वास्थ्य उत्तम प्रकार से बनाये रखा है, जो इस बात का प्रतीक है कि संतुलित शाकाहार अमृत जैसा है ।

- **स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क, बफैलो** – अमरीका में ४७००० से भी अधिक बच्चे हर वर्ष ऐसे जन्म लेते हैं, जिन्हें माता पिता के मांसाहारी होने के कारण कई बीमारियाँ जन्म से ही लगी होती है और ये बच्चे बड़े होने पर भी पूर्णतः स्वस्थ नहीं हो सकते ।
- **डॉ. माइकल एस. ब्राउन व. डॉ. जोसेफ एल. गोल्डस्टीन** (अमरिका, नोबेल पुरस्कार विजेता) – हृदयरोग से बचाव के लिए कोलेस्टेरोल को जमने से रोकना अति आवश्यक है, यह तत्त्व वनस्पति में नहीं के बराबर होता है । मांस, अण्डों व जानवरों से प्राप्त वसा में यह काफी मात्रा में होता है । जो व्यक्ति मांस या अण्डे खाते है, उनके शरीर में रिस्पटरों की संख्या में कमी हो जाती है, जिससे रक्त के अंदर कोलस्टेरोल की मात्रा अधिक हो जाती है । इससे हृदयरोग, गुर्दे के रोग, एवं पथरी जैसी बीमारियों को बढ़ावा मिलता है ।
- **डॉ. एम. राँक** (ब्रिटेन) – शाकाहारियों में संक्रामक एवं घातक बीमारियाँ मांसाहारियों की अपेक्षा कम पाई जाती है । वे मांसाहारियों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, छरहरे बदन, शांत प्रकृति और चिन्तनशील होते है । (एक सर्वेक्षण के बाद प्रतिपादन) ।
- **डॉ. विलियम सी. राबर्टस** – अमेरिका में मांसाहारी लोगों में दिल के मरीज़ ज्यादा है, उनके मुकाबले शाकाहारी लोगों में दिल के मरीज़ कम होते है ।
- **हेल्थ एज्यूकेशन काउंसिल** – विषाक्त भोजन (Food poisoning) से होनेवाली ९०% मौतों का कारण मांसाहार है ।
- **प्रोफेसर एग्नरर्ग** (जर्मनी) – अण्डा ५१.८३% कफ पैदा करता है । वह शरीर के पोषक तत्त्वों को असंतुलित कर देता है ।
- **डॉ. ई.बी.एमारी** (अमेरिका) तथा **डॉ. इन्हा** (इंग्लेंड) – अण्डा मनुष्य के लिये जहर है । (विश्व विख्यात पुस्तकों – 'पोषण का नवीनतम विज्ञान' एवं 'रोगियों की प्रकृति' में)

- **डॉ. आर. जे. विलियम** (इंग्लेंड) – अण्डा खाने वाले को हृदयरोग, ऐकजीमा, लकवा जैसे भयानक रोगों का शिकार हो जाना पड़ता है ।
- **डॉ. नितीन महेता** (यु.के.) – प्रतिवर्ष करीब ५० लाख व्यक्ति salmonella से प्रभावित होते है । N.H.S. के अनुसार चिकन व अण्डों से हुए फूडपायज़निंग के शिकार रोगियों का उपचार करने में २० लाख डालर खर्च होता है ।
- गोमांस (Beaf) से होनेवाली एक दिमागी बीमारी है creutzfelat Jacob's disease. ऑस्ट्रेलिया, जहां सर्वाधिक मांसभोजन खाया जाता है, वहां आंतो का कैंसर सब से अधिक है ।
- रक्त वाहिनियों की भीतरी दीवारों पर कोलेस्टेरोल की तहों का जमना, यह हृदयरोग – उच्च रक्तचाप का मुख्य कारण है । कोलेस्टेरोल का सर्वाधिक प्रमुख स्रोत अण्डा है ।
- अण्डा, मांस खाने से पेचिस, मंदाग्नि आदि बीमारियां घर कर जाती हैं, आमाशय कमजोर होता हैं व आंते सड़ जाती हैं ।
- अण्डा, मांस खाने से शरीर की विषावरोधी शक्ति नष्ट होती है, और शरीर साधारण सी बीमारी का भी मुकाबला नहीं कर पाता । बुद्धि व स्मरणशक्ति कमजोर पड़ती है । विकास मंद हो जाता है ।
- शाकाहार त्वचा की रक्षा करता है । मांस, अण्डे, शराब त्वचा रोगों को बढ़ावा देते है । त्वचा में जलन महसूस होने वाले रोग के अधिकांश रोगी मांसाहारी ही पाए गए हैं ।
- माइग्रेन, इन्फैक्शन से होनेवाले रोग, स्त्रियों के मासिक धर्म संबंधी रोग आदि भी मांसाहारियों में ही अधिक पाये जाते है ।

तो यह है दुनियाभर के डॉक्टर, विज्ञानी एवं आरोग्यनिष्णातो के अभिप्राय एवं अनेक सर्वेक्षणों के परिणामों का प्रामाणिक प्रतिपादन, जो वास्तव में हमारे प्राचीन शास्त्रों का ही समर्थन करतें है । हमारे शास्त्र भी यही बात करते है – हिंसा से दुःख मिलता है । अहिंसा से सुख मिलता है । योगशास्त्र में कहा है –

दीर्घमायुः परं रूप – मारोग्यं श्लाघनीयता ।
अहिंसायाः फलं सर्वं, किमन्यत् कामदैव सा ।।

दीर्घ आयुष्य, अत्यन्त सुंदर रूप, आरोग्य व प्रशंसनीयता यह सब अहिंसा का फल है । सचमुच, अहिंसा से हर मनोकामना पूर्ण होती है ।

विश्व में कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जो जीवदया की दृष्टि से मांसाहार का त्याग करते हैं । कई लोग ऐसे है जो आरोग्य की दृष्टि से मांसाहार का त्याग करते है । शेष लोग अज्ञानवश मांसाहार करते हैं और उक्त रोगों के शिकार बनकर दुःखी हो जाते है, ऐसे लोग अपने आप में स्वयं मांसाहारत्याग के मूक उपदेशक है । इस तरह हम देख सकते है, कि सारा विश्व मांसाहार के त्याग के पक्ष में ही स्थित है ।

(परोपकारी सज्जनों को निवेदन - कृपया इस लेख का पोस्टर, पेम्पलेट आदि के रूप में जाहिरस्थान, अस्पताल, मेडिकल स्टोर्स आदि में प्रचार करें)

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

नामरूपादिमायैव, ह्यावृणोति स्वलक्षणम् ।
यावत्तदावृतस्तावत्, तिष्ठत्यात्मा भवार्णवे ॥

नाम और रूप की माया ही आत्मा के स्वरूप को ढक देती है । मेरा नाम - मेरा फोटो - मेरा शरीर - ऐसी माया से जब तक आत्मा आवृत होती है, तब तक आत्मा संसारसागर से मुक्त नहीं हो सकती ।

નામ અને રૂપની માયા જ આત્માના સ્વરૂપને ઢાંકી દે છે. મારું નામ - મારો ફોટો - મારું શરીર - આવી માયાથી આત્મા જ્યાં સુધી ઢંકાયેલો છે, ત્યાં સુધી આત્મા સંસારસાગરથી મુક્ત થઈ શકતો નથી.

गुरुकृपाकटाक्षेण, सूर्यशतातिशायिना ।
अन्तःप्रकाशयोगेन, भिद्यते तत्तमोऽखिलम् ॥

गुरु की कृपादृष्टि सो सूर्यो से भी अधिक तेजस्वी होती है, जिस से आत्मा को आन्तर-प्रकाश की प्राप्ति होती है, व उस माया का सारा अंधकार छिन्न-भिन्न हो जाता है ।

ગુરુની કૃપાદૃષ્ટિ સો સૂર્યો કરતાં પણ વધુ તેજસ્વી હોય છે, જેનાથી આત્માને આંતર-પ્રકાશની પ્રાપ્તિ થાય છે, અને તે માયાનો સમસ્ત અંધકાર છિન્ન-ભિન્ન થઈ જાય છે.

तदेतत् साम्यसाम्राज्यं, सा चैषा समतासुधा ।
यदवाप्त्या मुदद्वैते, नित्यमात्मा निमज्जति ॥

यही है समभाव का साम्राज्य, यही है समता की सुधा, जिसे पाकर आत्मा सदा के लिए आनन्द के अद्वैत में मग्न हो जाती है ।

આ જ છે સમભાવનું સામ્રાજ્ય, આ જ છે સમતાની સુધા, જેને પામીને આત્મા સદા માટે આનંદના અદ્વૈતમાં મગ્ન થઈ જાય છે.

ग्रन्थः - **अमृतसर्वस्वम् (अमृतबिन्दूपनिषद् का श्लोकवार्त्तिक)**

ग्रन्थकार एवं अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

स्वानुभूतेरभावेन, जगदनुभवो यतः ।
जातायां स्वानुभूतौ तज्, जगन्नेहानुभूयते ॥

जगत की वस्तु, व्यक्ति और घटनाओं का अनुभव उसे ही होता है, जिसके पास स्वानुभूति नहीं है । अतः स्वानुभूति होने पर जगत का अनुभव नहीं होता ।

જગતની વસ્તુ, વ્યક્તિ અને ઘટનાઓનો અનુભવ એને જ થાય છે, કે જેની પાસે સ્વાનુભૂતિ નથી. માટે સ્વાનુભૂતિ થાય, તો જગતનો અનુભવ નથી થતો.

आत्मनोऽनुभवे यस्मात्, तदन्यन्न प्रतीयते ।
ततो हेयाद्यभावेन, स्वानुभवो हि शिष्यते ॥

आत्मानुभूति की क्षणों में आत्मा से अतिरिक्त अन्य किसी भी चीज की प्रतीति ही नहीं होती । इस दशा में कोई चीज छोडने या लेने जैसी नहीं रहती । रहता है केवल स्वानुभव ।

આત્માનુભૂતિની પળોમાં આત્મા સિવાય બીજી કોઈ વસ્તુની પ્રતીતિ જ થતી નથી. આ દશામાં કોઈ વસ્તુ છોડવા કે લેવા જેવી નથી રહેતી, રહે છે માત્ર ને માત્ર સ્વાનુભવ.

अनात्मात्मधियैवेह, प्रोद्भवः सर्वसंसृतेः ।
अतः संसारनिर्विण्णः, स्वान्यत्रात्ममतिं त्यजेत् ॥

"शरीर मैं हूँ," इस भ्रान्ति से ही समग्र संसार की उत्पत्ति हुई है । यदि संसार के दुःखो से खिन्न हो, तो समज लो कि, मैं आत्मा ही हूँ, और कुछ भी नहीं ।

શરીર એ હું છું - આ ભ્રમથી જ સમગ્ર સંસારની ઉત્પત્તિ થઈ છે, સંસારના દુઃખોથી જો કંટાળ્યા હો, તો સમજી લો, કે 'હું' આત્મા જ છું, બીજું કશું જ નહીં.

ग्रन्थ - **अध्यात्मसर्वस्वम् (अध्यात्मोपनिषद् का श्लोकवार्त्तिक)**

ग्रन्थकार एवं अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

यत्सुखाब्धेः पुरस्तात् तु, बिन्दवति जगत्सुखम् ।
तदुदेतीह सत्सौख्यं, ज्ञानमग्नस्य योगिनः ॥

जिस सुख के सागर की तुलना में सारी दुनियाँ का सुख केवल एक बुंद जैसा है, वह श्रेष्ठ सुख प्राप्त होता है ज्ञानमग्न योगी को ।

જે સુખના સાગરની તુલનામાં આખી દુનિયાનું સુખ માત્ર એક ટીપા જેવું છે, તે શ્રેષ્ઠ સુખ જ્ઞાનમગ્ન યોગીને પ્રાપ્ત થાય છે.

सहजेन स्वभावेन, परभावात् पलायनम् ।
यस्य तस्यात्मनिष्ठस्य, परब्रह्मणि मग्नता ॥

जो सहज स्वभाव से परभाव से पलायन करता है, वह आत्मनिष्ठ साधक परब्रह्म में मग्न है ।

જે સહજ સ્વભાવથી પરભાવથી દૂર ભાગે છે, તે આત્મનિષ્ઠ પરબ્રહ્મમાં મગ્ન છે.

तटस्थता यथोदेति, परस्य सुखदुःखयोः ।
स्वसुखादौ तथाभावात्, साक्षित्वमवशिष्यते ॥

जैसे दुसरों के सुख-दुःख के प्रति व्यक्ति उदासीन रहती है, ठीक वैसे ही अपने सुख-दुःख के प्रति उदासीन भाव आ जाये, तो साक्षिभाव ही अवशिष्ट रहता है ।

જેમ બીજાનાં સુખ-દુઃખના પ્રત્યે વ્યક્તિ ઉદાસીન રહે છે, તે જ રીતે પોતાનાં સુખ-દુઃખ પ્રત્યે તટસ્થભાવ આવી જાય, તો સાક્ષીત્વ જ બાકી રહે છે.

ग्रन्थ - **निमग्नोपनिषद् (ज्ञानसार-मग्नाष्टक पर श्लोकवार्त्तिक)**

ग्रन्थकार तथा अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

परस्वत्वपरिज्ञान-मेतन्मात्रैव संसृतिः ।

स्वस्वत्वदृढविज्ञान-मेतन्मात्रैव निर्वृतिः ॥

शरीर, संपत्ति, घर आदि को अपना समज़ना, यही बन्धन है। आत्मगुणों को ही अपना समजना, यही मुक्ति है ।

શરીર, સંપત્તિ, ઘર વગેરેને પોતાનું સમજવું, એ જ બંધન છે. આત્મગુણોને જ પોતાના સમજવા, એ જ મુક્તિ છે.

परत्र स्वत्वविज्ञानं, सर्वद्वन्द्वनिबन्धनम् ।

तदेतन्मरणं साक्षा-देतदेव हि बन्धनम् ॥

जो 'मेरा' नहीं, उसे 'मेरा' समजना, यही सर्व दुःखो का हेतु है, मृत्यु भी यही है, और बन्धन भी यही है ।

જે 'મારું' નથી, એને 'મારું' સમજવું, આ જ સર્વ દુઃખોનું મૂળ છે. મૃત્યુ પણ આ જ છે, અને બંધન પણ આ જ છે.

स्वभावपूर्णतायां तद्, यतितव्यं प्रयत्नतः ।

अस्यां सिद्धिमुपेतायां, साधनीयं न शिष्यते ॥

आत्मा के शुद्ध स्वभाव की पूर्णता को प्राप्त करने के लिये दृढ प्रयत्न करना चाहिये, यह एक ऐसी सिद्धि है, जिसे प्राप्त करने पर और कुछ भी साध्य नहीं रहता।

આત્માની શુદ્ધ સ્વભાવની પૂર્ણતાને પામવા માટે દૃઢ પ્રયત્ન કરવો જોઈએ, આ એક એવી સિદ્ધિ છે, જેની પ્રાપ્તિ પછી બીજું કાંઈ જ સાધવાનું બાકી રહેતું નથી.

ग्रन्थ - **सम्पूर्णोपनिषद् (ज्ञानसार - पूर्णाष्टक पर श्लोकवार्तिक)**

ग्रन्थकार एवं अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

यदा शान्तरसास्वादो, लेशतोऽप्यनुभूयते ।
शेषाः सर्वेऽपि भासन्ते, विरसा हि रसास्तदा ॥

जब शान्तरस के आस्वाद का थोडा भी अनुभव होता है, तब भोजनरस, शृंगार रस आदि बाकी के सभी रस फीके लगते है ।

જ્યારે શાન્તરસના આસ્વાદનો થોડો પણ અનુભવ થાય છે, ત્યારે ભોજનરસ, શૃંગારરસ વગેરે બાકી બધાં જ રસો ફિક્કા લાગે છે.

नार्थात् परोऽप्यनर्थोऽस्ति, न चिन्तायाः परा चिता ।
न धनान्निधनं घोरं, विषयान्न परं विषम् ॥

अर्थ (वैभव) से बड़ा कोई अनर्थ नहीं है । चिन्ता से बड़ी कोई चिता नहीं है। धन से बड़ी कोई मृत्यु नहीं है और विषय (मनोहर स्पर्श, रूप आदि) से बड़ा कोई विष नहीं है ।

અર્થ (વૈભવ)થી મોટો કોઈ અનર્થ નથી. ચિંતાથી મોટી કોઈ ચિતા નથી. ધનથી મોટું કોઈ મૃત્યુ નથી અને વિષય (મનોહર સ્પર્શ, રૂપ વગેરે)થી મોટું કોઈ વિષ નથી.

स्वभावलाभहेतुर्य-दात्मपरिणतेर्भवेत् ।
ज्ञानामृतं तदेतत् स्यात्, तदन्यत्तु हलाहलम् ॥

जो आत्मा में परिणत होकर स्वभाव की प्राप्ति का हेतु बने, वही ज्ञानामृत है, उसके अतिरिक्त चाहे कितनी भी जानकारी क्यों न हो, वह सब झहर है, यतः उससे आत्मा, अपने सुखमय स्वभाव से वंचित होती है ।

જે આત્મામાં પરિણતિ પામે અને આત્મસ્વભાવની પ્રાપ્તિનું કારણ બને, તે જ જ્ઞાનામૃત છે, એ સિવાય તો ચાહે ગમે તેટલી જાણકારી કેમ ન હોય, એ બધું ઝેર છે. કારણ કે તેનાથી આત્મા પોતાના સુખમય સ્વભાવથી વંચિત રહે છે.

ग्रन्थ - **तृप्त्युपनिषद् (ज्ञानसार - तृप्त्यष्टक पर श्लोकवार्त्तिक)**

ग्रन्थकार एवं अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

भावाभिलाषिणा तस्मात्, कर्त्तव्यः सत्क्रियादरः ।
भावप्राणाः क्रियैवेह, तदभावे मृतो हि सः ॥

जिसे अच्छे भाव की अभिलाषा है, उसे अच्छी क्रिया में प्रवृत्त होना चाहिये। क्रिया ही भाव का प्राण है, उसके बिना भाव जीवित नहीं रह सकता ।

જેને સારા ભાવની અભિલાષા છે,એણે સારી ક્રિયામાં પ્રવૃત્ત થવું જોઈએ. ક્રિયા જ ભાવનો પ્રાણ છે, એના વિના ભાવ જીવિત રહી શકતો નથી.

यावतीह क्रिया भाव-स्तावानेव न संशयः ।
अक्रियस्यापि मे भाव-स्तदेतद् दम्भलक्षणम् ॥

इसमें कोई सन्देह नहीं की जितना सम्यक् क्रिया का आचरण है, उतना ही दिल में सम्यक् भाव है । यदि कोई कहे, कि 'भले ही मैं आचरण नहीं करता, तथापि मेरे दिल में शुभ भाव है' - तो यह (प्रायः) दंभ का लक्षण है ।

એમાં કોઈ શંકા નથી, કે જેટલું સમ્યક્ ક્રિયાનું આચરણ છે, એટલો જ હૃદયમાં સમ્યક્ ભાવ છે. જો કોઈ એમ કહે, કે 'ભલે હું આચરણ નથી કરતો, તો પણ મારા હૃદયમાં શુભ ભાવ છે' - તો આ (પ્રાયઃ) દંભનું લક્ષણ છે.

ज्ञानक्रियाद्वयेऽप्यस्मात्, कर्त्तव्यः परमादरः ।
यदेकस्याप्यवज्ञा तु, मोक्षावज्ञैव तत्त्वतः ॥

अतः ज्ञान व क्रिया - दौनों का परम आदर करना चाहिये, यतः उनमें से एक की भी अवज्ञा वास्तव में मोक्ष की ही अवज्ञा है ।

મારે જ્ઞાન અને ક્રિયા એ બંનેનો પરમ આદર કરવો જોઈએ. કારણ કે એનામાં એકની પણ અવજ્ઞા એ વાસ્તવમાં મોક્ષની જ અવજ્ઞા છે.

ग्रन्थ - **क्रियोपनिषद् (ज्ञानसार-क्रियाष्टक पर श्लोकवार्त्तिक)**

ग्रन्थकार एवं अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

न शून्यात् परमं पूर्णं, नाकिञ्चनात् परो नृपः ।
न मौनात् परमा भाषा, नायोगाद्योग उत्तमः ॥

शून्य से भी श्रेष्ठ कोई पूर्ण नहीं है । अकिंचन (मुनि) से बड़ा कोई राजा नहीं है । मौन से भी श्रेष्ठ और कोई भाषा नहीं है । अयोग (संपूर्णनिवृत्ति) से भी उत्तम कोई योग नहीं है ।

શૂન્યથી પણ શ્રેષ્ઠ કોઈ પૂર્ણ નથી. અકિંચન (મુનિ)થી મોટો કોઈ રાજા નથી. મૌનથી પણ શ્રેષ્ઠ કોઈ ભાષા નથી. અયોગ (સર્વનિવૃત્તિ)થી ઉત્તમ કોઈ યોગ નથી.

त्याग एव परं तत्त्वं, त्याग एव परं शिवम् ।
सर्वत्यागं समाश्रित्य, शिष्टमिष्टं परं पदम् ॥

त्याग ही परम तत्त्व है । त्याग ही परम कल्याण है । सर्व त्याग की शरण लें, तो परम पद ही बाकी रहता है ।

ત્યાગ જ પરમ તત્ત્વ છે. ત્યાગ જ પરમ કલ્યાણ છે. સર્વ ત્યાગનું શરણ લઈએ, તો પરમ પદ જ બાકી રહે છે.

अमृतमेतदेवात्र, येन न म्रियते पुनः ।
सैषा सञ्जीवनी साक्षाद्, यया नित्यं हि जीवति ॥

यही है अमृत, जिसे पाकर फिर कभी मरना नहीं पड़ता । यही है प्रत्यक्ष संजीवनी, जिस से स्वाधीन हो जाता है शाश्वत जीवन ।

આ જ છે અમૃત, જેને પામીને ફરી કદી ય મરવું પડતું નથી. આ જ છે સાક્ષાત્ સંજીવની, જેનાથી સ્વાધીન થઈ જાય છે શાશ્વત જીવન.

ग्रन्थ - **त्यागोपनिषद् (ज्ञानसार-त्यागाष्टक पर श्लोकवार्त्तिक)**

ग्रन्थकार एवं अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

यत् साक्षिभूतमात्रेण, सद्गुरुणा ह्यवाप्यते ।

पुस्तकलक्षकोट्याऽपि, ह्यगुरोस्तत् सुदुर्लभम् ॥

सद्गुरु सेवक साक्षी बने रहे, तो भी उन से जो प्राप्त हो सकता है, वह लाखों-करोडों पुस्तकों से भी उसे नहीं मिल सकता, जिसने गुरु का आदर से स्वीकार ही नहीं किया ।

સદ્ગુરુ માત્ર સાક્ષી બની રહે, તો પણ એમનાથી જે પામી શકાય છે, તે લાખો-કરોડો પુસ્તકોથી પણ એને નથી મળી શકતું, જેણે ગુરુનો આદરથી સ્વીકાર જ નથી કર્યો.

गुरुकृपाकटाक्षेण, सुलभो ज्ञानसागरः ।

यतस्याप्यविनीतस्य, यद्बिन्दुरपि दुर्लभः ॥

गुरु की कृपादृष्टि से ज्ञान का सागर सुलभ हो जाता है, जिसका बिन्दु भी अविनीत को दुर्लभ है, फिर चाहे वह कितना भी प्रयास क्यों न करे ?

ગુરુની કૃપાદૃષ્ટિથી જ્ઞાનનો સાગર સુલભ બની જાય છે. જેનું બિન્દુ પણ અવિનીતને દુર્લભ છે, પછી ભલેને એ ગમે તેટલો પ્રયત્ન કેમ ન કરે ?

एष एवोच्यते मोक्षो, बहुमानो गुरौ हि यः ।

एष एव च संसारो, यो गुरावप्यनादरः ॥

गुरु के प्रति जो सम्मान भाव, वही मोक्ष है । गुरु के प्रति भी जो अनादर, वही संसार है ।

ગુરુ પ્રત્યે જે બહુમાન ભાવ, એ જ મોક્ષ છે. ગુરુ પ્રત્યે પણ જે અનાદર, એ જ સંસાર છે.

ग्रन्थ - **गुरुसर्वस्वम् (द्वयोपनिषद् पर श्लोकवार्त्तिक)**

ग्रन्थकार एवं अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

इच्छासन्त्याग एवेह, भवसन्त्याग उच्यते ।

मुमुक्षोस्तद्विदानस्य, कथमिच्छा प्रवर्तते ? ॥

इच्छा का त्याग ही संसार का त्याग है। जो इस सत्य को जानता है, जिसे मुक्ति की अभिलाषा है, उसे और कोई भी इच्छा कैसे हो सकती है ?

'ઇચ્છાનો ત્યાગ એ જ સંસારનો ત્યાગ છે' - જે આ સત્યને જાણે છે, જેને મોક્ષના ઇચ્છા છે, એને બીજી કોઈ ઇચ્છા કેમ જાગી શકે ?

सर्वोत्कृष्टं सुखं नित्यं, य आत्मन्येव पश्यति ।

बाह्यसौख्याय किं तस्य, स्पृहाया स्याल्लवोऽपि हि ॥

जो सदा अपनी आत्मा में ही सर्वोत्कृष्ट सुख को देखता है, उसे बाह्य सुख के प्रति तनिक भी स्पृहा कैसे हो सकती है ?

જે હમેશા પોતાની આત્મામાં જ સર્વોત્કૃષ્ટ સુખને જુએ છે, એને બાહ્ય સુખ માટે થોડી પણ સ્પૃહા શી રીતે થઈ શકે ?

मोदो हि दृश्यते तस्य, शोको यस्य पुरा भवेत् ।

सर्वदाऽऽनन्दमग्नस्य, कः शोकः किञ्च मोदनम् ॥

हर्ष उसे ही होता है, जिसे पहले शोक हुआ हो। जो हमेशा के लिये आनन्द में ही मग्न है, उसे शोक भी कैसा ? और हर्ष भी कैसा ?

હર્ષ એને જ થાય છે, જેને પહેલા શોક થયો હોય, જે હંમેશ માટે આનંદમાં જ મગ્ન છે, એને શોક પણ કેવો ? ને હર્ષ પણ કેવો ?

ग्रन्थ - **परमसर्वस्वम् (परमहंसोपनिषद् पर श्लोकवार्तिक)**

ग्रन्थकार एवं अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान् पार्थ ! मनोगतान् ।
आत्मनैवात्मना तुष्टः, स्थितप्रज्ञः स उच्यते ॥

हे अर्जुन ! जब मनुष्य अपने मन की सारी कामनाओं का त्याग कर दे और अपनी आत्मा से ही सन्तुष्ट रहे, तब उसे स्थितप्रज्ञ कहते है ।

હે અર્જુન ! જ્યારે મનુષ્ય પોતાના મનની બધી કામનાઓનો ત્યાગ કરી દે અને પોતાની આત્માથી જ સંતુષ્ટ રહે, ત્યારે એને સ્થિતપ્રજ્ઞ કહેવાય છે.

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः, स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

जिस का मन दुःखों में उद्विग्न नहीं होता है, और जिसे सुखों की स्पृहा भी नहीं है । जिसे न राग है, न भय है, न क्रोध, उसे स्थितप्रज्ञ मुनि कहते है ।

જેનું મન દુઃખોમાં ઉદ્વિગ્ન નથી થતું અને જેને સુખોની સ્પૃહા પણ નથી. જેને નથી રાગ, નથી ભય અને નથી ક્રોધ, એને સ્થિતપ્રજ્ઞ મુનિ કહેવાય છે.

यः सर्वत्रानभिस्नेह-स्तत्तत् प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जिसे किसी के साथ भी पक्षपात नहीं है । अच्छा पाकर जिसे आनन्द नहीं होता, और बुरा पाकर जिसे द्वेष नहीं होता, उसे कहते हैं स्थितप्रज्ञ ।

જેને કોઈની પણ સાથે પક્ષપાત નથી. સારું મળે, તો જેને હર્ષ નથી થતો અને ખરાબ મળે, તો જેને દ્વેષ નથી થતો, એને કહેવાય છે સ્થિતપ્રજ્ઞ.

ग्रन्थ - भगवद्गीता

ग्रन्थकार - भगवान श्रीकृष्ण

अनुवादकार - आचार्य कल्याणबोधि

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

मधु-मांसनिवृत्ताश्च, निवृत्ता मद्यपानतः ।
कालमैथुनतश्चापि, विज्ञेयाः स्वर्गगामिनः ॥

जो शहद व मांस नहीं खाते, जो शराब नहीं पीते एवं जो ब्रह्मचर्य का पालन करते है, उनको स्वर्गगामी समजना चाहिये ।

જેઓ મધ અને માંસ ખાતા નથી. જેઓ દારૂ નથી પીતા અને જેઓ બ્રહ્મચર્યનું પાલન કરે છે, તેમને સ્વર્ગગામી સમજવા જોઈએ.

मधु मांसं च ये नित्यं, वर्जयन्तीह मानवाः ।
जन्मप्रभृति मद्यं च, दुर्गाण्यतितरन्ति ते ॥

जो मनुष्य हमेशा के लिये शहद, मांस व शराब का त्याग करते है, वे कठिन आपत्तिओं को भी पार कर लेते है ।

જે મનુષ્ય હંમેશા મધ, માંસ અને દારૂનો ત્યાગ કરે છે, તેઓ કઠણ આપત્તિઓને પણ પાર કરી જાય છે.

स सर्वलोकानाप्नोति, यो मांसं परिवर्जयेत् ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्, तथा लोकद्वये भवेत् ॥

जो मांस का त्याग करता है, वह सर्व श्रेष्ठ स्थानों को प्राप्त करता है । इस जन्म में और अन्य जन्मों में उसके लिये कोई चीज दुर्लभ नहीं है ।

જે માંસનો ત્યાગ કરે છે, તે સર્વ શ્રેષ્ઠ સ્થાનોને પ્રાપ્ત કરે છે. આ જન્મમાં અને અન્ય જન્મોમાં એના માટે કોઈ વસ્તુ દુર્લભ નથી.

ग्रन्थ - **श्रीविष्णुधर्मोत्तर**

अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

अहिंसा सर्वधर्माणां, धर्मः पर इहोच्यते ।

अहिंसया तदाप्नोति, यत्किञ्चिन्मनसेप्सितम् ॥

सर्व धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है अहिंसा । अहिंसा से हर मनोकामना पूरी होती है ।

સર્વ ધર્મોમાં શ્રેષ્ઠ ધર્મ છે અહિંસા. અહિંસાથી બધી મનોકામનાઓ પૂરી થાય છે.

स्त्रीहिंसा धनहिंसा च प्राणिहिंसा तथैव च ।

त्रिविधां वर्जयेत् हिंसां, ब्रह्मलोकं प्रपद्यते ॥

स्त्रीहिंसा (बलात्कार आदि), धनहिंसा (चोरी, भ्रष्टाचार आदि) एवं प्राणीहिंसा (मांसाहार आदि) - इस तीन प्रकार की हिंसा का जो त्याग करता है, वह ब्रह्मलोक के दिव्य सुख को प्राप्त करता है ।

સ્ત્રીહિંસા (બળાત્કાર વગેરે), ધનહિંસા (ચોરી, ભ્રષ્ટાચાર વગેરે) અને પ્રાણીહિંસા (માંસાહાર વગેરે) - આ ત્રણ પ્રકારની હિંસાનો જે ત્યાગ કરે છે, તે બ્રહ્મલોકના દિવ્ય સુખને પ્રાપ્ત કરે છે.

सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्व-दानानि चैव हि ।

यो मांसरसमास्वाद्य सर्वमांसानि वर्जयेत् ।

सर्व वेद एवं सर्व दान भी वह फल नहीं दे सकते, जो फल सर्व मांस के त्याग से मिलता है ।

સર્વ વેદો અને સર્વ દાનો પણ તે ફલ નથી આપી શકતા, જે ફળ સર્વ માંસના ત્યાગથી મળે છે.

ग्रन्थ - **विष्णुधर्मोत्तर**

अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

॥ श्लोकसौन्दर्यम् ॥

परगुणमच्छरभावो सगुणपसंसा य पत्थणाकरणं ।

अविणीयत्तं पुत्तय ! इमाइं गरुयं पि लहुइंति ॥

हे पुत्र ! (१) दुसरों के गुणों पर द्वेषभाव (२) अपने गुणों की प्रशंसा (३) याचनाकरण (४) अविनय - यह चार चीज ऐसी है, जिन से महान व्यक्ति भी तुच्छ बन जाती है ।

હે પુત્ર ! (૧) બીજાના ગુણો પર દ્વેષભાવ (૨) પોતાના ગુણોની પ્રશંસા (૩) યાચનાકરણ (૪) અવિનય - આ ચાર વસ્તુ એવી છે, જેમનાથી મહાન વ્યક્તિ પણ તુચ્છ બની જાય છે.

परनिन्दापरिहारो, सपसंसालज्जणं अणत्थित्तं ।

सुविणीयत्तं च पुणो, इमाइं लहुयं पि गरुइंति ॥५०१॥

(१) दुसरों की निन्दा का त्याग (२) अपनी प्रशंसा से शर्म का अनुभव करना (३) याचना का त्याग (४) सम्यक् विनय - इन चार चीजो से क्षुद्र व्यक्ति भी महान बन जाती है ।

(૧) બીજાની નિંદાનો ત્યાગ (૨) પોતાની પ્રશંસાથી શરમ અનુભવવી (૩) યાચનાનો ત્યાગ (૪) સમ્યક્ વિનય આ ચાર વસ્તુથી ક્ષુદ્ર વ્યક્તિ પણ મહાન બની જાય છે.

जे निच्चं धम्मरया, अमय च्चिय ते जए मया वि नरा ।

जीवंता वि मय च्चिय, ते उण जे पावपडिबद्धा ॥

जो मनुष्य हमेशा धर्ममग्न है, वे मरने के पश्चात् भी विश्व में अमर ही है । किन्तु जो पापमग्न है, वे जीवित होते हुए भी मृततुल्य ही है ।

જે હંમેશા ધર્મમગ્ન છે, તેઓ મૃત્યુ બાદ પણ વિશ્વમાં અમર જ છે. પણ જે પાપમગ્ન છે, તેઓ જીવંત હોવા છતાં પણ મૃતતુલ્ય જ છે.

ग्रंथ - **संवेगरंगशाला**

ग्रंथकार - **पूजनीय आचार्य जिनचन्द्रसूरिजी**

अनुवादकार - **आचार्य कल्याणबोधि**

●●●

नाम है तेरा तारणहारा

अनादि काल से
मोहित है जीव अपने नाम पर ।
यही मोह यदि देव-गुरु के नाम पर आ जाये,
तो उसे प्रशस्त मोह कह सकते है ।
यह शुभारंभ है मोक्षयात्रा का ।
धन्य है वे,जो कलम का परीक्षण करते समय
सहजतया देव-गुरु का नाम लिखते है ।
उतनी ही सहजता से,
कि जितनी सहजता से अन्य जीव अपना नाम लिखते है ।
अस्तित्व के विसर्जन की यह साधना है ।
जहां 'मैं' लापता हैं । कही दिखता ही नहीं ।
जो हैं ही नहीं, वह कैसे दिख सकता है ?
जो खुद को भी नज़र नहीं आ रहा, वह दुसरों को
कैसे दिख सकता है ?

बस, इसी शून्य में साकार होती है आगमवाणी
तस्सन्नी तद्दिट्ठी तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे
सच्चा साधक मानो 'होता' ही नहीं हैं ।
होते है केवल गुरु ।
साधक गुरु के इशारे पर चले,
इस में कुछ कमी की प्रतीति होती है ।
'गुरु ही चल रहे है'
यह है साधना की पूर्णता ।

द्वादशार नयचक्र के कालवाद के परिप्रेक्ष्य में कहे तो
कालः पचति भूतानि - यहा साशंकता है ।
काल एव पच्यते - यहा निश्चितता है ।

नाम और रूप यही है संसार ।
सिद्धदशा में नाम और रूप नहीं, तो संसार भी नहीं ।
सच्ची साधना वही है
जो नामाध्यास व रूपाध्यास (देहाध्यास) का क्षय करे ।
इन दौनों की पकड से आत्मा को मुक्त करे, वह मोक्षयात्रा
और इन दौनों की पकड को मजबूत करे
वह संसारयात्रा...**नामरूपे हि संसारः....**

अपने नाम का मोह छूट जाये
और वह मोह देव-गुरु के नाम पर आ जाये,
यह अनादि की विपरीत यात्रा का एक महादुर्लभ मोड है ।
'मने व्हालुं लागे प्रभु तारुं नाम'
यह वचन अब वर्तन बनता है ।
होठों पर और दिल में अब देव-गुरु का नाम स्थायी होता है ।
पहले जो शायद जीवन का एक हिस्सा था
वह अब जीवन बनता है ।
महायोगी के शब्दों में अब
'कपट रहित थई आतम अरपणा' होता है ।
जिसका स्वामित्व अपना नहीं है
उसके स्वामित्व का दावा करना
वह कपट ही हैं ना ?
'अरपणा' करने में कुछ भी छोडना नहीं होता है,
सिवाँ अध्यास-भ्रम ।

हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है ।
इस न्याय से इस अर्पण के समक्ष
देव-गुरु प्रत्यर्पण करते है...

जैन दृष्टि में नारी गौरव

- वर्द्धमानतपोनिधि

प.पू. आचार्यश्री कल्याणबोधिसूरिजी

जैन जीवनशैली का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है **श्राद्धविधिप्रकरण** । परम उपकारी आचार्य श्रीरत्नशेखरसूरिजी ने वि०सं० १५०६ में इस महान शास्त्र रचना की थी । जो शास्त्र आगम आदि पूर्व शास्त्रो के आधार से निर्मित हुआ है, और आज ५६३ साल के बाद भी सुखमय जीवन के मार्ग को प्रकाशित कर रहा है । जैन दृष्टि से नारी गौरव इस शास्त्र में विशद रूप से प्ररूपित है । नारी के प्रति पति का वचन कैसा होना चाहिये इस विषय में शास्त्रवचन है-

सप्पणय-वयण-सम्माणणेण तं अभिमुहं कुणइ ॥२८३॥

पत्नी के प्रति पति का यह उचित कर्तव्य है, कि वह पत्नी को प्रिय वचन कहे, तथा पत्नी का सम्मान करे ।

शास्त्र संक्षिप्त एवं गंभीर होते है । अल्प शब्दो में बहुत कुछ कह देते है । गृहिणी कोइ दासी या गुलाम नहीं । किन्तु सम्मानपात्र है । पतिव्रतात्व यह नारीधर्म है, तो नारी का सम्मान करना यह पुरुषधर्म है । संत कबीरने कहा है ।

कबीर ! मीठे वचन से, सुख उपजे कुछ ओर ।

एही वशीकरण मत्र है, तजीए वचन कठोर ॥

मधुर वचन अनुपम सुखदायक है, वशीकरण मंत्र ही है, अतः कठोर वचन का त्याग करना चाहिये । वचन मधुर तो घर मधुर...घर मधुर तो जीवन मधुर...नारीगौरव का पहला सोपान यह है । जिसे प्रस्तुत कर के शास्त्रकार ने न केवल स्त्रीसम्मान का उपदेश दिया है, मगर घर को स्वर्ग बनाने का रहस्य भी बता दिया है । शास्त्रकार आगे कहते हैं ।

वत्थाभरणाइ समुचियं देह ॥२८४॥

पत्नी को उचित वस्त्र और अलंकार देने चाहिये । सर्वत्र उचित बर्ताव ही शास्त्रोपदेश का तात्पर्य है, तो जो घर का आधार है, इस के प्रति उचित कर्तव्य की वे उपेक्षा क्यों करेंगे ? नारी तो विशेष सम्मानपात्र है । अत एव कहा है - **न गृहं**

गृहमित्याहुः, गृहिणी गृहमुच्यते । वर को 'घर' नहीं कहते, गृहिणी को घर कहते है । अग्रिम सूत्र है –

न विओयइ अप्पणा सद्धिं ॥२८५॥

पत्नी को अपने से वियुक्त न करे । कोई ऐसा प्रयोजन न रखे, जिससे अधिक समय घर से बाहर रहना पडे । यतः पतिवियोग का दुःख असह्य होता है, जिसकी असर पत्नी की प्रसन्नता एवं स्वास्थ्य पर पडती है । अतः ऐसा न करे ।

अवमाणं न पयंसइ ॥२८६॥

नारी का अपमान न करे । कभी उससे कुछ भूल भी हो, तो शान्ति से शिखाये । उसे गुस्सा आये तो अनुकूल आचरण से उसे शान्त करे । यही बात कहते है –

खलिए सिक्खेइ कुवियमणुणेइ ॥२८६॥

एक यदि आग है, तो अन्य का कर्तव्य है कि वह पानी बने । स्वयं कुपित होने से तो वह आग ज्यादा भडकेगी । जिस में पूरे घर की शान्ति भस्मीभूत हो जायेगी ।

रोगाइसु नोविक्खइ ॥२८८॥

पत्नी रोग आदि से पीडित हो, तब उसकी उपेक्षा न करे, किन्तु प्रयासपूर्वक उस के आरोग्य का प्रबन्ध करे ।

सुसहाओ होइ धम्मकज्जेसु ॥२८८॥

पत्नी के धर्मकार्यो में उसकी अच्छी तरह सहाय करे, यतः वह धर्म की आराधना से हर सुख पा सके । इस तरह हम देख सकते है कि नारीगौरव वह कोइ आधुनिक क्रान्ति नहीं है । हमारे प्राचीन शास्त्रो में यह बात सूक्ष्मतया प्रतिपादित है, जिसका आचरण शिष्टजनों में प्राचीन काल से होता आया है ।

शंका – यदि नारी सम्मानपात्र है, तो उसे घर की चार दीवारो में नियंत्रित क्यों किया जाता है ? इस जुलम को शास्त्र भी सम्मत क्यों करते है ? शास्त्र में यह भी तो कहा है कि

नाड्य-पिच्छणयाइसु जणसंमद्देसु वारेइ ॥२८४॥

समाधान – पत्नी को नाटक, खेल, लोगो की भीड में जाने से रोकें । एक माँ यदि अपने बेटे को किसी नुकशानकारक स्थान में जाने रोकती है, तो उसे जुलम नहीं कहा जाता । ठीक उसी तरह इस बात में भी समजना चाहिए । जो शास्त्र नारी का

उपरोक्त विधा से पूर्ण सम्मान करता है, वही शास्त्र जुलम क्यों करेगा । नारी तो घर का रानी है । परिवार का प्राण है । उसे घर से निकालकर बाझार में लाने से उस की जो दुर्दशा हुई है, उस का बयान करना मुमकिन नहीं । परिवार विशीर्ण हुए, संतान अनाथ हुए, माता-पिता असहाय हुए, सात्त्विक भोजन दुर्लभ हुआ...ऐसी सैकडो समस्याए एक बाजु में है, तो दुसरी ओर नारी की कोमल काया पर दुगुना दायित्व, भयानक मानसिक तनाव, चिड़चिडानापन, बस-ट्रेन आदि में में सफर की यातना, हज़ारो हवसखोरो की आँखो की सामना, बोस - से लेकर प्युन तक के पुरुषो से अवर्णनीय परेशानीया...ऐसी सैकड़ों पीडायें है ।

यह नारीस्वातंत्र्य है ? या नारी जुलम ? विश्व में भयानक विधा से बढवी हुइ अनैतिक, दुर्घटनाये एवं स्त्री-आत्महत्या या स्त्री-हत्या के मूल में भी यह नारी स्वातंत्र्य (?) ही नही तो और क्यों है ? नारी तो घर की रानी है । जो माता-पिता तुल्य सास-ससुर के सान्निध्य में पूर्ण सुरक्षित है । किसी की हिम्मत नही, कि उसे आँख उठाकर देख भी सके । वह तो जीवदया - जयणा के पालनपूर्वक घर का संचालन करती है । संतानो में वात्सल्यपूर्वक संस्कार सिंचन करती है । पति को निर्मल प्यार देती है, एवं सेवा करती है । नीतिशास्त्र कहते है कि जिस घर में गृहिणी नहीं वह घर श्मशानतुल्य है । आधुनिक विश्व जिन्हें 'सफल नारी' (?) समज़ता है, उनके घर की एक मुलाकात ले आये, आपको यह बात अच्छी तरह समज़ में आ जायेगी । स्व-कर्तव्य एवं स्व-सुख से वंचित हो कर एव स्व-शील को असुरक्षित कर के जो सफलता मिले, वो वास्तव में निष्फलता ही है ।

शंका - यह सब पुराने जमाने की बाते है । अब जमाना बदल गया है । अल्ट्रा वुमन के इस ट्रेड में ऐसे शास्त्रपाठ कौन सुनेगा ?

समाधान - वह, जिसे अपने जीवन को वास्तव में सुखी बनाना है । जिसे दुःखी ही होना है, उन्हें भला कौन रोक सकता है । आप भले ही मेरी न मानो । किन्तु आधुनिक अल्ट्रा वुमन की जो आदर्श है ऐसी अभिनेत्रीओ के पारिवारिक जीवन पर एक दृष्टिपात कर लो । आप को पता चल जायेगा कि जमाना जिस दिशा में दौड रहा है, उस दिशा में क्यां है ? कही पढ़ा था यह संवाद-

अभिनेत्री - यह मेरे पति है ।

पत्रकार - आप के हर पति से मिलकर मुझे बहुत ही खुशी होती है ।

मानता हूँ – इस विषय में और कुछ कहने की जरूरत नहीं । याद रहे, परदे के लम्हें अल्पतम होते है । दीर्घ है जीवन की वास्तविकता, जो घर-परिवार से ही जूडी हुई है । पैसे या प्रसिद्धि केवल अहंकार का पोषण कर सकते है, सच्चे सुख का कभी नहीं। अत: परम कारुणिक शास्त्रकारोने नारी का पूर्ण सम्मान करने के साथ साथ नारी रक्षा के जो भी उपाय दिखलाये वह नारी के हित में है, एवं उसका पालन ही सुखोपाय है, इस में कोई शंका नहीं ।

शंका – तो स्त्री केवल घर में सेवा करती रहे, यही आपका कहना है ?

समाधान – आप समझे नहीं, पुरुष घर का बजेट पूरा करने के लिये जो परिश्रम करते है, वह क्यां घर की सेवा नहीं ? वह अपनी विधा की सेवा है । पुरुष यदि रसोई बनाने जाये तो, वह खुद भी परेशान होगा और सारा घर भी । बस, इसी तरह नारी यदि पुरुषयोग्य कार्य करने जाये तो वह भी दु:खी होगी और सारा घर भी । तुल्यता का अर्थ यह नहीं कि सब को एक लाठी से चलाया जाये । तुल्यता का अर्थ है समप्राधान्य, जो अपनी अपनी विधा से तुल्यगौरव का प्रतिपादन करता है ।

जहा तक सेवा की बात है, तो अपने संतान को नौकर / आया / बेबीसीटर के हवाले कर बोस / सेठ की सेवा करने जाना, या सास-ससुर को असहाय छोड़कर जनसेवा करने जाना, इसमें कितना औचित्य ? घर के सदस्यो के मन को दुभाकर दुनिया का मनोरंजन करने जाना उसमें कितना औचित्य ? एक सफल गृहिणी सारे घर के सदस्यो को सात्त्विक भोजन खिलाकर दोपहर में शांति से अपने शयनकक्षमें आराम फरमा रही है, वह भी एक अपूर्व सन्तोष के साथ, और उसी समय एक नारी ऑफिस में काम के बोजे के साथ युद्ध कर रही है और साथ साथ उसे घर की चिंता भी सता रही है, और इतना कम हो वैसे वह ऑफिस समय और सफर के दौरान असुरक्षितता का अनुभव भी कर रही है । दासी कौन ? और रानी कौन ? अब बात स्पष्ट है ।

नारी स्वातंत्र्य की बात करके नारी को बाझार में लानेवालो ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, आभोग या अनाभोग से नारी पर जो अत्याचार किये है, ऐसे अत्याचार शायद पीछे सैंकड़ों सालो में नहीं हुए । नारी का सही सम्मान तो हमारे शास्त्रो ने किया है, एवं इन शास्त्रो का आदर करने वालोने किया है ।

शंका – पर सुना है कि शास्त्रो में नारी की निंदा भी खूब लिखी हुई है, उस का क्यों ?

समाधान – यह शंका केवल उनकी है, जिन्होंने शास्त्रो का सम्यक् अध्ययन नहीं किया । संसारी या त्यागी तभी जीवन में सुखी हो सकते है । जब वे अपनी विषयवासना पर अल्प / अधिक विजय पा सके । अतः शास्त्रकारो ने विषयसुख का पर्दाफाश शास्त्रो में किया है, एवं संसार की असारता का प्रत्यक्षदर्शन कराया है । यतः मनुष्य अपने मन को काबू में रख सके, अपनी प्राप्त सामग्री में संतोषपूर्वक जी सके एवं इर्ष्या, वासना, हवस, क्रोध आदि दोषो का शिकार न बने । ऋषि-मुनिओं का एक आचार है कि वे उपदेश देते समय अपनी दृष्टि पुरुष – सभा पर रखते है । इसमें पक्षपात नहीं, किन्तु दृष्टिसंयम है । अतः पुरुष को विरागदेशना देते हुए वे नारी के विषय में जो उपदेश देते है, उस का तात्पर्य यही है, कि वह अपनी कामवृत्ति को अंकुश में रखे । अपनी पत्नी का द्रोह न करे, एवं कामवासना की आग में अपने सदाचार, सद्गुण, शील एवं नैतिकता को भस्मीभूत न कर दे । उदाहरण के रूप में

परनारी झहरी छुरी, कोइ मत लाओ अंग ।
रावन के दश शिर गये, पर नारी के संग ॥

संत कबीरजी का यह दोहा है । इस का तात्पर्य यह है कि – हर पति अपनी पत्नी को वफादार रहै । जो तात्पर्य नही समजता वह ऐसा भी कह सकता है की शास्त्रोने समस्त नारी जाति को विषयुक्त छुरी कह कर उस का अपमान किया है । मगर ऐसी बात है ही नहीं । ऋषि मुनि पुरुष को नजर में रख के उपदेश देते थे । मगर वे नारी की उपेक्षा नही करते थे, साथ साथ में यह भी स्पष्टता कर देते थे, कि मैं जो बात पुरुष को नारी के बारे में कर रहा हूँ, वही बात नारी को पुरुष के बारे में भी समज़ लेनी है । **मूलशुद्धि** ग्रन्थ में कहा है ।

तं च तुल्लं नराणं पि, जं इत्थीणं सवित्थरं ।
दंसित्ता दोसजालं तु, दंसियं समए समं ॥१७४॥

निंदा न तो नारी की है, न तो पुरुष की है । निंदा नो है दोषो की । पुराणो में, उपनिषदो में या अन्य शास्त्रो में जहा भी यह प्रश्न है, वहा यही तात्पर्य समज़ना चाहिये । जीवमात्र को शिवस्वरूप देखनेवाले शास्त्रकार भला किसी की निंदा कैसे कर सकते है। निंदा केवल दोषो की । प्रशंसा केवल गुणो की । फिर वे गुण स्त्री में हो, या पुरुष में, गुण है, तो प्रशंसा है ।

शंका – तो फिर शास्त्रकारो ने स्त्री के गुणो की प्रशंसा क्यों नही की ?

समाधान - अवश्य की है । **मूलशुद्धि** ग्रन्थ में कहा है ।

चाउवण्णस्स संघस्स मज्झे सुव्वंति साविया ।
सद्दंसणेण नाणेण, जुत्ता सीलव्वएहि य ।।१७७।।

चतुर्विध संघ का एक प्रधान अंग है श्राविका । जो सम्यग्दर्शन से सम्यग्ज्ञान से एवं शीलव्रतो से विभूषित है । संवेगरंगशाला शास्त्र में कहा है

किं पुण गुणकलियाओ महिलाओ दूरवित्थयजसाओ ।
तित्थयर चक्कि हलहर - गणहर सप्पुरिसजणणीओ ।।४४५६।।
सीलवईओ सुव्वंति, महीयले पत्तपाडिहेराओ ।
नरलोयदेवयाओ, चरमसरीराओ पुज्जाओ ।।४४५७।।

कई नारीयाँ गुणगण से शोभायमान होती है । जिन का विस्तृत यश दूर-सुदूर पहुंच जाता है । तीर्थंकर-चक्रवर्त्ती-बलदेव-गणधर जैसे महापुरुषो की जननी भी नारी हो होती है । शास्त्रों में अनेक शीलवती नारीयो का यशोगान है, जिन के श्रेष्ठ गुणों से आवर्जित होकर देवोने भी उनकी सेवा की है सचमुच, ऐसी गुणवंती नारी मनुष्यलोक में भी देवता की तरह सम्माननीय है । जो उसी भव में मोक्ष में जाती है, ऐसी चरमशरीरा नारी भी होती है, जो अवश्य पूजनीय है ।

ओहेण न वूढाओ, जलंत घोरग्गिणा न दड्ढाओ ।
सीहेहिं सावएहिं य, परिहरियाओ अपावाओ ।।४४५८।।

ऐसी शीलवती नारी के गुण के प्रभाव से नदी की बाढ भी उसे कष्ट पहुँचाने में निष्फल गई है । जाज्वल्यमान भयानक अग्नि भी उसे जला नही सका है । उन के निष्पाप चरित्र के प्रभाव से शेर और जंगली जनावरो ने भी उन्हें काट नहीं पहुँचाया है। यह तो केवल झलक है, ऐसे तो अनगिनत शास्त्रवचन है, जिन्होंने गुणवंती नारी की प्रशंसा है, जैसे की शान्तसुधारस ग्रंथ में कहा है-

या वनिता अपि यशसा साकं कुलयुगलं विदधति सुपताकम् ।
तासां सुचरितसञ्चितराकं, दर्शनमपि कृतसुकृतविपाकम् ।।१४-६।।

जो स्त्रियाँ अपने पीहर और ससुराल - दोनो कुल की कीर्तिपताका को अपने गुणो से लहराती है, सच्चरित्रयुक्त उन पवित्र स्त्रियों का दर्शन भी महान पुण्योदय से मिलता है ।

शंका - क्यां आगम सूत्र में भी ऐसा उल्लेख है ?

समाधान - अवश्य है । परम पावन भी महानिशीथ सूत्र में कहा है -

एत्थं च गोयमा ! जं इत्थीयं भएण वा, लज्जाए वा, कुलंकुसेण वा जाव धम्मसद्धाए वा तं वेयणं अहियासेज्जा, नो वियम्मं समायरेज्जा, से णं धण्णा, से णं पुण्णा, से य णं वंदा, से णं पुज्जा, से णं दट्ठव्वा, से णं सव्वलक्खणा, से णं सव्वकल्लाणकारया, से णं सव्वुत्तम-मंगलनिहि । सेणं सुयदेवता, से णं सरस्वती, से णं अंबहुडी, से णं अच्चुया, से णं इंदाणी, से णं परमपवित्तुत्तमा, सिद्धी मुत्ती सासया सिवगइ त्ति ।

हे गौतम ! जो स्त्री भय से, लज्जा से, कुल के अंकुश से या यावत् धर्मश्रद्धा से भी वासना की वेदना को सह करती है । मगर दुराचार नही करती, वह धन्या है, वह पुण्यवती है, वह वंदनीया है, पूजनीया है, दर्शनीया है, सर्वलक्षणसम्पन्ना है, सर्वकल्याणकारिणी है, सर्वश्रेष्ठ मंगलनिधिरूप है, श्रुतदेवता है, सरस्वती है, अम्बा है, अच्युता है, इंद्राणी है, परम पावन श्रेष्ठ सिद्धि है । वह मुक्ति है, वह शाश्वत शिवगति है।

इस से भी अधिक नारीसम्मान और क्यों हो सकता है ? सर्वज्ञशासन निष्पक्षपात है, जहाँ गुण है वहाँ वेदन है । जहाँ गुण है वहाँ सम्मान और गौरव है । यदि गुणदृष्टि नहीं है तो नारीसम्मान भी एक तरह से उसका अपमान है । कैसे ? समज़ाता हूँ - आझादी के दौरान एक कार्य चल रहा था - हरिजनउद्धार. उन्हें मानवीय अधिकार दिलाने के लिये जो सुधारक प्रयास करते थे, वह कहते थे - 'यह हरिजन है, उन्हे मंदिर में आने दो' । तब विनोबा भावे ने इस बात का विरोध करते हुए कहा - ऐसा कहो, कि 'यह मानव है, इसे मंदिर में आने दो ।' बात छोडी है, किन्तु उस का मर्म समज़ने जैसा है । यदि आप हरिजनत्व के आधार पर उनका भला करना चाहते हो, तो वास्तव में आप की दृष्टि में सम्मान नही, दया है । और दया हंमेशा हीन पर ही होती है । तो आप ने उसे भले ही मंदिरप्रवेश का अधिकार दिया, पर हीन तो समज़ा ही ।

विश्व का मूल प्रश्न नारीसम्मान का है ही नहीं । मूल प्रश्न गुणो के प्रति उपादेयदृष्टि का एवं गुणसम्मान का है । इससे ही विश्व निश्चितरूप से सुखी बन सकता है । एक अन्य उदाहरण - कन्या भ्रूण हत्या के विरोध के आंदोलन का जो करुण भी है और हास्यास्पद भी । कन्या भ्रूण हत्या पाप है, तो भ्रूण हत्या पाप नहीं ? यह कहाँ का न्याय ? यदि भ्रूण हत्या को ही प्रतिबंधित कर दिया जाये, तो कन्या भ्रूण हत्या

अपने आप बंद हो जायेगी, कन्या के प्रति यदि शासको का सचमुच वात्सल्य उभर रहा है, तो उसे नाबूद करने का सफल उपाय यही हो सकता है ।

हमारी बात यह है - सच्चा सम्मान है गुणदृष्टि से किया हुआ सम्मान । और जैसे कि हमने देखा, जैन शास्त्रो में और जैन परंपरा में यह सम्मान की एक अनूठी काष्ठा दृष्टिगोचर हो रही है ।

शंका - हमने सुना है कि अहंकारी साधुओ की परंपराने श्रमणीओ को अपने अधिकारो से वंचित कर दिया है वे उनके द्वारा वंदन करवाते तो है, मगर खुद कभी इन्हें वंदन नहीं करते, तो इसके बारे में आपका क्यों कहना है ?

समाधान - यह बात किसी ने अज्ञानवश कही हो, ऐसा ज्ञात होता है । यतः यह बात शास्त्र और परंपरा दोनों रीति से असत्य है । श्रमण भगवंत चाहे पंन्यास, उपाध्याय, आचार्य या गच्छाधिपति भी क्यों न हो, वे लघुतम श्रमणी को भी 'मत्थएण वंदामि' कह कर अवश्य वंदन करते है । हमारे गच्छाधिपति श्रीजयघोषसूरीश्वरजी महाराजा का भी यह स्वभाव है, उन के पास साध्वीजी भगवंत का आगमन होने पर तत्क्षण प्राकृतिक रूप से उनके हाथ वंदना करते हुए जुड जाते है । इस स्थिति में उपरोक्त विधान न केवल अज्ञान है, किन्तु सुविहित श्रमण परंपरा की आशातना का पाप भी । अतः ऐसे विधानकर्ता पर भावकरुणा करते हुए उन्हें सत्य समजाना चाहिये ।

शंका - एक बार मैंने रास्ते में देखा कि साधुजी ने सामने से आ रहे साध्वीजी को वंदना नहीं की ।

समाधान - आपने साध्वीजी पर भी ध्यान दिया होता, तो आप को पता चलता कि उन्होंने भी साधुजी को वंदना नहीं करी है । यह एक शास्त्राज्ञा है, कि मार्ग पर श्रमण-श्रमणी परस्पर वंदना न करे । अन्यथा अज्ञानी लोग को उनके असत् संबंध की शंका हो सकती है । ऐसी शंका करके वह अज्ञानी श्रमण-आशातना के पाप से दुःखी न हो, इस लिये करुणा कर के प्रभु ने ऐसी आचाररीति का प्ररूपण किया है । बाकी, गुणदृष्टि से अंतर में परस्पर का आदर-सम्मान अवश्य होता है ।

शंका - एक बार मैंने ऐसा भी देखा कि साध्वीजी ने तो मार्ग पर साधुजी को वंदना की । किन्तु साधुजी ने उन्हें वंदना नहीं की

समाधान - शायद आपको इससे विपरीत दृश्य भी सुलभ हो जायेगा किन्तु उसका हेतु आज्ञाभंग का आशय या आचारपरिवर्तन नहीं है । जो नूतनदीक्षित हो, या

अभी तक जिन का आचारसंहिता का अध्ययन किसी हेतु से न हो सका हो, वे सहज आदर से मार्ग में भी वंदना कर लेते है । किन्तु यह वंदना प्रमाण नहीं है, अतः उससे कोई आचार की प्रतिष्ठा संभवित नहीं है । समग्र विश्व के जीवो पर प्रभु की अपरंपार करुणा से प्रभु ने जो आचारमार्ग दिखाया वह एकान्तहितकारक है । जिनशासन में कोई आचार ऐसा नहीं, जो एक भी जीव के कर्मबंध का हेतु हो, प्रभु तो समग्र विश्व को सर्व दुःखो से मुक्त करना चाहते है, अतः उनकी आज्ञा सर्वकल्याणानुकूल ही होती है ।

इसका अन्य उदाहरण इसी विषय में प्रस्तुत करता हूँ, कि साधुजी साध्वीजी को बृहद्वंदन (जो खमासमणद्वय, इच्छकार इत्यादिपूर्वक किया जाता है) नहीं करते । यतः वह क्रिया देख कर भी धर्म का उपहास हो सकता है, कि संसार की तरह यहाँ भी स्त्रीराज्य है । अतः उपहासकर्ता परम पावन इस धर्म की अवगणना करके अनंत संसार दुःख को निश्चित न करे, इस लिये परम कारुणिक जिनेश्वर भगवंतो ने यह आचारमार्ग प्रतिपादित किया है । एक बात याद रहे, कि यह बृहद् वन्दन न करते हुए भी साधुजी वंदना तो अवश्य करते है, एवं साध्वीगण प्रति उनके हृदय में तुल्य सम्मान एवं आदर की भावना अवश्य होती है ।

शंका - क्यां ऐसा नही हो सकता ? कि यह आचारमार्ग प्रभु द्वारा प्रतिपादित न हो, किन्तु आधुनिक अहंकार का उत्पादन हो ।

समाधान - बिल्कुल नहीं, यतः **कल्पसूत्र** के **कृतिकर्मकल्प** की टीका में लिखा है ।

साध्वीभिश्च चिरदीक्षिताभिरपि नवदीक्षितोऽपि साधुरेव वन्द्यः । चिरदीक्षित साध्वीजी भगवंतो का भी कर्त्तव्य है, कि वे नवदीक्षित साधुजी को बृहद्वन्दना करे ।

शंका - क्यां इसे पक्षपात नहीं कह सकते ?

समाधान - अंतर में आदर एवं सम्मान की पूर्णता, शास्त्राज्ञा की निष्ठा, एवं सर्वजीवो के हित की कामना जिस आचार में रही है, उसे पक्षपात कहना, यह तीर्थंकरो की आशातना है, अतः ऐसी शंका स्वप्न में भी नहीं करनी चाहिये ।

शंका - क्यां ऐसा नहीं हो सकता की यह तीर्थंकर की आज्ञा न हो कर के टीकाकार की ही कल्पना हो ?

समाधान - 'टीका' नूतन सिद्धान्त रचना नहीं होती, किन्तु पूर्व शास्त्रो के

अनुसरण से एवं सुधर्मास्वामीजी से उद्भूत सद्गुरु की परम पावन परंपरा से प्राप्त अर्थ की सुगम बोधदायक कृति होती है। टीका यानि वृत्ति, और वह मूल सूत्र का ही एक अंग है। अतः उस का भी मूल सूत्र जितना ही माहात्म्य है। उस का अनादर मूल सूत्र के अनादर तुल्य है अतः आगम आशातना के महापापस्वरूप है।

शंका – यह बात क्यां आप अपनी विधा से कहते है, या उसका कोइ प्राचीन प्रमाण भी है ?

समाधान – अवश्य है। महायोगी श्रीआनंदघनजी महाराज ने स्तवनचोवीशी में श्रीनमिनाथ प्रभु के स्तवन में कहा है –

चूर्णि भाष्य सूत्र निर्युक्ति, वृत्ति परंपर अनुभव रे।
समयपुरुषना अंग कह्या ए, जे छेदे ते दुर्भव्य रे॥

चूर्णि (प्राकृत टीका), भाष्य (सूत्र + निर्युक्ति विवेचक), सूत्र (मूलपाठ), निर्युक्ति (सूत्र का विस्तृत विवेचन), वृत्ति (संस्कृत टीका), परंपरा (सद्गुरु की परम्परा से प्राप्त अर्थ, अनुभव (गीतार्थ महापुरुषो का आगमानुसारी संवेदन) – यह सब आगमपुरुष के अंग है। जो उनकी अवज्ञा करता है वह दुर्भव्य है, अर्थात् वह संसार में दीर्घ काल तक भ्रमण करता हुआ दुःखी होता है।

शंका – तो क्यां कल्पसूत्र-टीकाकार ने भी पूर्व महाशास्त्रो का अनुसरण कर के इस अर्थ का लेखन किया है ?

समाधान – अवश्य, यदि आप किसी बहुश्रुत के पावन सान्निध्य को पा सको, तो वे आप को बृहत्कल्प आदि सूत्रो के अनेकानेक प्रमाण दे सकते है। यहाँ अधिक विस्तार न हो, इस लिये प्रस्तुत नहीं करता।

शंका – क्यां भगवान महावीरस्वामिजी के समय में भी यही आचार प्रसिद्ध था ?

समाधान – हाँ, सिद्धान्त अर्थरूप से शाश्वत है। केवल श्रीमहावीरस्वामिजी के काल में ही नहीं, किन्तु चौबीस तीर्थंकरो के काल में भी यही आचार प्रवृत्तिमान था, एवं आज भी महाविदेहक्षेत्र में श्रीसीमंधरस्वामिजी आदि विहरमान जिनेश्वरो के शासन में यही आचार प्रवृत्तिमान है। सिद्धान्त त्रैकालिक है, और उस के रहस्य, तात्पर्य एवं उस में गर्भित सर्वकल्याणभावना भी त्रैकालिक है।

शंका – क्यां आप कोई ऐसा उदाहरण दे सकते है, कि जिस में चिरदीक्षित साध्वीजी ने नवदीक्षित साधुजी को वंदन किया हो, वह भी भगवान श्रीमहावीरस्वामिजी

के काल में ?

समाधान - क्यों नहीं ? यह उदाहरण है प्रभु वीर की प्रथम शिष्या खुद श्रमणी श्रीचन्दनबालाजी का । ३६००० शिष्याओं की गुरुणी चरमशरीरा परम पुण्या इस साध्वीजी ने अपने से ही प्रतिबोधित हो कर दीक्षित बने साधुजी को दीक्षा के दिन ही विनयपूर्वक वंदना करी थी । (एक बात उल्लखनीय है, कि प्राचीन या आधुनिक कोई भी साध्वीजी विवश या बाध्य हो के वंदना नहीं करती, पर गुणदृष्टि से व जिनाज्ञापालन की दृष्टि से प्रमोद भाव से वंदना करती है, इस तरह उनकी तथा उनको हाथ जोड कर मत्थएण वंदामि कहते हुए गच्छाधिपतिओ की भी लघुता नहीं, किन्तु महानता ही है ।)

शंका - क्यां यह बात भी आधुनिक कथाकारों की कृति नही हो सकती ?

समाधान - बिल्कुल नहीं । यतः **प्रभु महावीरस्वामिजी** के **स्वहस्तदीक्षित** शिष्य, **अवधिज्ञानी** महात्मा **श्रीधर्मदासगणि महाराजा** ने खुद उपदेशमाला नाम के ग्रंथ में इस घटना का आलेखन किया है ।

शंका - क्यां आप उस ग्रंथ का मूलपाठ प्रस्तुत कर सकते है ?

समाधान - अवश्य, यह है महामहिम श्री **उपदेशमाला** ग्रंथ का वह मूलपाठ -

अणुगम्मइ भगवई, रायसुअज्जा सहस्सविंदेहिं ।
तह वि न करेइ माणं परियच्छइ तं तहा नूणं ॥१३॥
दिणदीक्खियस्स दमगस्स, अभिमुहा अज्जचंदणा अज्जा ।
णेच्छइ आसणगहणं, सो विणओ सव्वअज्जाणं ॥१४॥
वरिससयदीक्खियाए, अज्जाए अज्जदीक्खिओ साहू ।
अभिगमणवंदणनमंसणेणं, विणएण सो पुज्जो ॥१५॥

शंका - प्रभु श्री मल्लिनाथ भगवान स्त्री तीर्थंकर थे, तो क्यां वे अपने तीर्थवर्ती लघु साधुजी को वंदना करते थे ?

समाधान - पहली बात तो यह है, कि तीर्थंकर चाहे कोई भी हो, कल्पातीत होते है, अतः सर्वसामान्य वंदनव्यवहार उन्हें लागू नही होता । दुसरी बात, वे दीक्षा समय भी केवल सिद्ध भगवंतो को वंदना करते है, यतः अरिहंत तो स्वयं है । तीसरी बात, प्रभु श्री मल्लिनाथ स्त्रीतीर्थंकर हुए, वह अनंत काल में एक बार होनेवाली आश्चर्यभूत घटना है। अतः एव इस अवसर्पिणी काल के दश आश्चार्यो में इस का भी समावेश है।

अत: सर्व साधु सहित समस्त चतुर्विध संघ एवं अन्य नर-नारीदेव-देवीयों उन्हें वंदन करते है । इस में साधुजी का बृहद् वन्दन भी अनंतकाल में कादाचित्क घटित आश्चर्य में संलग्न है, अत: न वो चर्चास्पद हो सकती है, न तो सामान्य सिद्धान्त को बाध्य कर सकती है । यह घटना जनमानस में पूर्वोक्त असद्भाव का सृजन भी नहीं कर सकती है। क्यों कि तीर्थंकर के परम ऐश्वर्य एवं अतिशयो के प्रभाव से ऐसी सम्भावना भी नही रहती ।

शंका - तो क्यां हम मान सकते है कि श्रमण परंपरा में साध्वीजी के प्रति पूर्ण आदर एवं सम्मान भाव रहा है ।

समाधान - यदि आप कदाग्रहमुक्त मन से सोचे, तो इस के ठोस प्रमाण मैं प्रस्तुत कर चुका हूँ । तथापि आप की जिज्ञासा हो, तो अन्य प्रमाण भी प्रस्तुत कर सकता हूँ ।

(१) **अपापाबृहत्कल्प** एवं **दुसमकालसमणसंघथयं**-अवचूरि में उल्लेख है, कि आचार्य श्री कालकसूरिजी ने साध्वीजी की रक्षा करने के लिये अत्यंत परिश्रम किया । यहाँ तक की अत्याचारी राजा गर्दभिल्ल को राज्यभ्रष्ट करवाया एवं साध्वीजी को मुक्ति दिलायी । विद्वज्जगत में यह इतिहास सुप्रसिद्ध है ।

(२) **कल्पसूत्र** आदि जो जो शास्त्र में इतिहास - सुविहित परंपरा का उल्लेख है, उन में साध्वीजीओ का भी गौरवपूर्ण उल्लेख किया गया है ।

(३) अनेकानेक विद्वान आचार्य भगवंतों ने एवं श्रमणो ने महासतीयों एवं **साध्वीजीयों के विस्तृत चरित्रग्रंथो** का निर्माण किया है । जिन में उन के शील आदि गुणो की भूरि भूरि अनुमोदना की गई है । आप कोइ भी विस्तृत ज्ञानभंडार की मुलाकात लेकर ऐसे अनेकानेक ग्रंथो के दर्शन कर सकते है ।

(४) सर्व गच्छाधिपति आचार्यों से लेकर प्रत्येक श्रमण सहित समस्त चतुर्विध संघ प्रात: प्रतिक्रमण में **भरहेसर सूत्र** में **सुलसाजी, चन्दनबालाजी** इत्यादि **महासती, महासाध्वीओ** का परम आदर से नामग्रहण - स्मरण करते है ।

(५) **अंतकृतदशा** नाम के आगम सूत्र में श्रीकृष्णमहाराजा की ८ रानीयाँ, श्रेणिक राजा की २६ रानीयाँ आदि दीक्षा लेकर जो अद्भुत साधना करती है, एवं उसी भव के अंत में मोक्ष प्राप्त करते है, उस का रोमहर्षक वर्णन है । **कालीदेवी** आदि रानीयाँ **श्रमणी** बनकर जो दुष्कर तपश्चर्या करती है, उस का प्रतिपादन पढकर

आज भी श्रमणगण उनके प्रति नतमस्तक हो जाते है ।

(६) १४४४ ग्रंथ कर्ता प.पू. **श्रीहरिभद्रसूरि** महाराजा ने साध्वीजी **याकिनी महत्तरा** का अपनी धर्ममाता के रूप में गौरवपूर्ण उल्लेख अपने ग्रंथो में कृतज्ञता एवं आदर भाव से किया है ।

(७) **धारिणी साध्वीजी** ने दो राजाओ के बीच समझौता करवा कर युद्धशांति का महान कार्य किया, उस का **आवश्यकनिर्युक्तिटीका** आदि शास्त्रो में आदरपूर्ण वर्णन है ।

(८) शास्त्रों में भरतक्षेत्र से महाविदेह में सीमंधरस्वामी के पास गयी हुई एक व्यक्ति का उल्लेख मिलता है, जिनका नाम है - **यक्षा साध्वीजी** ।

(९) अपनी माता **साध्वीजी पाहिणी** की आराधना की अनुमोदनार्थ कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने ३$\frac{१}{२}$ क्रोड श्लोक प्रमाण विराट साहित्य का सृजन किया ।

(१०) पाटण के अष्टापदजी मन्दिर में वि० सं० १२०५ की **साध्वीजी देमतीजी** गणिनी की मूर्ति बिरजामना है । मातर तीर्थ में वि० सं० १२९८ की **साध्वीजी पद्मश्री** की मूर्ति बिराजमान है ।

(११) **साध्वीजी राजीमति** ने **मुनि रहेनेमि**जी को उपदेश देकर संयम में स्थिर किया इस बात का गौरवपूर्ण वर्णन परम पावन श्रीदशवैकालिक आगमसूत्र आदि अनेकानेक शास्त्रो में किया गया है ।

(१२) **श्रीधर्मलक्ष्मी महत्तरा भास** ग्रंथ में उल्लेख है कि खंभात में श्रेष्ठिपुत्री **मिलाप** थी। जो दीक्षा लेकर प्रतिदिन १५० गाथा कंठस्थ करती थी ।

(१३) साध्वीजी के स्वाध्याय को सुगम बनाने के लिये साधुजी भी शास्त्रप्रतिलेखन का परिश्रम करते है, जैसे की पं. श्रीकीर्त्तिविजयजीने वि०सं० १६८७ कार्त्तिक शुक्ल १० के दिन देलवाडा में साध्वीजी श्रीकल्याणऋद्धि के लिये पाक्षिकसूत्र की प्रति का लेखन किया था । ऐसे अनगिनत उल्लेख मिलते है, एवं वर्तमान में भी संभवित विधा से ऐसे कार्य चालु है ।

(१४) स्त्री / साध्वीजी की मुक्ति नही हो सकती इस मत का खंडन करने के लिये **शाकटायन आचार्यश्री**ने **स्त्रीनिर्वाण प्रकरण** नाम के ग्रंथ का सृजन किया है, जिन में आगम आदि शास्त्रो के प्रमाण एवं तर्कबल से न केवल स्त्रीमुक्ति को सिद्ध किया है, किन्तु साथ साथ **शीलाम्बुनिधिवेला, सुसत्त्वा, अनल्पधृतयः**

ऐसे गौरवप्रद विशेषणों से महासतीओ की हार्दिक अनुमोदना भी की है ।

(१५) **महोपाध्याय श्री यशोविजयजी** ने **अध्यात्ममतपरीक्षा** नाम के महान ग्रंथ में आगम आदि शास्त्रसमूह एवं तर्कों से स्त्रीनिर्वाण को प्रमाणित किया है । जिस में **'परमशीलश्रद्धादिगुणशालितया सुलसाद्या भगवतामपि प्रशस्याः'**- इत्यादि शब्दो से महासतीजीओ का परम सम्मान एवं गुणानुमोदन किया है ।

(१६) आज भी समस्त श्रमणगण प्रतिदिन दो बार प्रतिक्रमण में श्रमणसूत्र अंतर्गत **'साहुणीणं आसायणाए'** एवं **'सावियाणं आसायणाए'** इन पदों से 'मन-वचन-काया से साध्वीजी या श्राविकाजी के प्रति कोइ भी आशातना हो गइ हो, तो उसका प्रायश्चित्त करते है, जिस के भीतर में उन के प्रति श्रमणगण का सम्मान ही निहित होता है ।

(१७) वर्तमान में श्रमण **श्रीगुणहंसविजयजी** ने **'विश्वनी आध्यात्मिक अजायबी'** नाम के दो पुस्तक लिखे है । जिन में वर्तमानकालीन पूजनीय साधु-साध्वीजी भगवंतो की विशिष्ट साधना एवं विशिष्टगुणों का हृदयस्पर्शी प्रकाशन किया गया है, इस के माध्यम से एवं ऐसे अन्य प्रकाशनो के माध्यम से समस्त चतुर्विध संघ उन की भूरि भूरि अनुमोदना कर रहा है एवं अपने हृदय में उन के प्रति सम्मान भाव की वृद्धि कर रहा है ।

शंका - क्यां जैनविश्व में स्त्री सम्मान की अन्य भी बाते है ?

समाधान - हाँ, यह तो शायद उस की झलक भी नहीं । इस विषय पर विराट ग्रंथ की रचना भी कम ही होगी ।

शंका - तो फिर मुझे जो भ्रम हुआ उस का क्यां हेतु ?

समाधान - अज्ञान । समाज में कई लोग ऐसे भी है, जिनके अंतर की भावना तो शायद प्रशस्त होती है । किन्तु अज्ञानवश केवल अपनी कल्पनाओ के आधार पर असत्यप्रसार भी करते है । शास्त्र में कहा है, कि यदि श्रमण भी बहुश्रुत न हो, तो उसे उपदेश देने का अधिकार नहीं है ।

सुंदरबुद्धीइ कयं बहुयं पि न सुंदरं होइ ॥ उपदेशमाला ॥

जो गीतार्थ नहीं वह प्रशस्त भावना से भी कुछ कहने करने जाये, वह अप्रशस्त हो सकता है । ऐसी व्यक्ति यदि अपनी भूलों का प्रायश्चित्त भी करना चाहे, तो वह दुष्कर

होता है, क्यां कि वह तो अपना अज्ञान शायद दूर कर देगा, मगर जहाँ जहाँ उसने अज्ञान फैलाया है, उसका क्यों ? हमारे एक महात्मा को किसीने प्रवचन का आग्रह किया, तो वे रो पडे । उन्होंने कहा, कि यदि मुझ से कुछ भी उत्सूत्र (आगम आदि शास्त्र विरुद्ध) बोला गया, तो मेरा संसार कितना बढ जायेगा !' इसे कहते हे पापभीरुता, सरलता एवं मुमुक्षुता । प्रवचन एवं लेखन यह दोनों अहंकार क्षेत्र नहीं, किन्तु दायित्वक्षेत्र है । पर्याप्त शास्त्राभ्यास के बिना जिसका निर्वाह संभव नहीं । बहुश्रुत आत्मा प्रभु की आज्ञा के प्रति निष्ठावान होकर इन्हीं माध्यमो से स्व और पर का कल्याण करती है । और अज्ञ अल्पज्ञ आत्मा मतिकल्पना का आधार लेकर इन्हीं माध्यमो से स्व और पर का अहित करती है। अत: यदि सचमुच स्व-पर कल्याण की भावना हो, तो पहले सद्गुरु की शरण में दीर्घकाल तक शास्त्राभ्यास करना चाहिये, और जब तक सद्गुरु की अनुज्ञा न मिले तब तक उपदेश / लेखन दोनों विद्या से मौन ग्रहण करना चाहिये ।

शंका - जैन दृष्टि से स्त्री सम्मान को जान कर मेरा अंतर अधिक आदरपूर्ण बना है । मैं उन के लिये कुछ करना चाहता हूँ, तो मैं क्यों कर सकता हूँ ?

समाधान - समाज मैं सद्गुणो का साम्राज्य व्याप्त हो ऐसा प्रयास व सम्यक् शास्त्रज्ञान का प्रसार हो ऐसा प्रयास सद्गुरु के मार्गदर्शनानुसार करते रहना चाहिये । इस से समाज के सर्व अंग लाभान्वित होते है, एवं नारीविश्व भी इसी विधा से पूर्ण लाभान्वित होगा । हर दोष एवं हर दु:ख का मूल अज्ञान है, अज्ञान का निवारण ही दोषो और दु:खो का निवारण करता है । पहले अपने भीतर में उजाला करो और फिर विश्व में उजाला करो। स्व-पर कल्याण का यही एक मार्ग है । परम तारक जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा हो तो मिच्छामि दुक्कडम् ।

●●●

આર્ષ વિશ્વ
આચાર્ય કલ્યાણબોધિ

સત્યનો સાક્ષાત્કાર

આત્મોપનિષદ્

અયોધ્યા નરેશની રાજસભા પૂર્ણપણે ભરાઈ ગઈ છે. ક્રમશઃ એક પછી એક રાજકાજ ચાલી રહ્યું છે. એવામાં પ્રતિહારીએ આવીને કહ્યું, "મહારાજની જય હો. એક વિદ્વાન આપને મળવા માંગે છે. કહે છે કે હું નૈમિત્તિક છું. એક ખૂબ જ મહત્ત્વના ભવિષ્યવાણી કરવા આવ્યો છું." રાજાના ઈશારાથી નૈમિત્તિકનું આગમન થયું. સમ્માન સાથે એને ઉચિત આસન આપવામાં આવ્યું. રાજાએ ભવિષ્યવાણી વિષે પ્રશ્ન કર્યો, ને નૈમિત્તિકના મુખ પર ગંભીરતા છવાઈ ગઈ. આખી સભા ઉત્સુક હતી ભવિષ્યવાણી સાંભળવા, એમાં એની ગંભીરતા જોઈને ઉત્સુકતા અનેકગણી બની ગઈ. નૈમિત્તિકે કહ્યું, "રાજન્ ! આમ તો કહેતા જીભ ઉપડતી નથી. કહીશ, તો આપ સહુ કદાચ માનશો પણ નહીં. પણ મારી ફરજ સમજીને કહેવા આવ્યો છું. આજથી સાતમે દિવસે દરિયામાં ભયંકર તોફાન આવશે, એના પાણી આકાશને આંબશે ને એ ઘોડાપૂરમાં આખી દુનિયા ડુબા જશે. બસ...જળબંબાકાર...બીજું કશું જ નહીં બચે."

રાજસભામાં સન્નાટો છવાઈ ગયો. મંત્રીશ્વરે મહારાજના કાનમાં કાંઈક કહ્યું અને રાજાએ આદેશ કર્યો, "પંડિતજી ! સાત દિવસ સુધી તમારે અમારી નજરકેદમાં રહેવું પડશે. રોજ રાજસભામાં ઉપસ્થિત થવું પડશે. અને જો સાતમે દિવસે તમારી ભવિષ્યવાણી સાચી નહીં પડે, તો તમને મૃત્યુદંડ આપવામાં આવશે." પૂર્ણ સ્વસ્થતા સાથે પંડિતજીએ કહ્યું, "મને મંજૂર છે. કારણ કે મને મારા જ્ઞાન પર પૂરો વિશ્વાસ છે. જે થવાનું છે. એ થઈને રહેશે."

સાતમે દિવસે રાજસભામાં જાણે કીડિયારું ઉભરાયું...બધાના ધબકારા વધી ગયાં છે...બધાના ચહેરા પર ચિંતા અને કુતૂહલ છે. સ્વસ્થ છે એક માત્ર નૈમિત્તિક. રાજાનું આગમન થયું, અને નૈમિત્તિકે ગંભીર અવાજે કહ્યું, "રાજન્ ! જુઓ, સૃષ્ટિના ઈતિહાસમાં કદી નથી બની, એવી ઘટનાની શરૂઆત થઈ ગઈ છે. જુઓ, દરિયો વીફરી ગયો છે. ને ગામોના ગામોને તારાજ કરતો કરતો આવી રહ્યો છે." રાજા સ્તબ્ધ બનીને જોઈ રહ્યો....વાંભ વાંભ ઉછળતા મોજાઓ આકાશને આંબી

રહ્યા છે. હજારો લોકોને લાખો પશુઓ તણાઈ રહ્યા છે. એ ધસમસતા પાણીનો જોરમાં મકાનો પડી રહ્યા છે, વૃક્ષો ઉખડી રહ્યા છે..."જુઓ ! હવે તો આ દરિયો અયોધ્યાની સીમામાં પણ આવી ગયો. જુઓ, તમારી પ્રજા કેવી લાચારપણે તણાઈ રહી છે. ને હવે તો....આ પાણી રાજમહેલ સુધી આવી ગયું. જુઓ રાજસભાના પગથિયાં ય ડુબી ગયા. રાજન્ ! જીવ બચાવવો હોય તો ઉપરના માળે..." ને રાજા દોડ્યા...પહેલો માળ...બીજો માળ..ત્રીજો માળ...રાજાની ગતિ તેજ છે, તો પાણીની ગતિ પણ કાંઈ કમ નથી. દુનિયાભરનો મોતનો હાહાકાર રાજાના કાનમાં ગુંજી રહ્યો છે...મોતના ભણકારા વાગી રહ્યા છે. પાણી માત્ર ચાર પગથિયાં જ પાછળ છે. ચોથો માળ....પાંચમો માળ...છઠ્ઠો માળ....સાતમો માળ....ને હવે તો અગાશી આવી ગઈ. ને અગાશીમાંથી જે દશ્ય દેખાયું, એ ખરેખર ચક્કર આવી જાય તેવું...બસ...બે-ચાર ક્ષણ....ને ચારે બાજુ આકાશને આંબતું પાણી....બધું જ એક કરી નાખશે...રાજા અગાશીની સીમા સુધી પહોંચ્યાં ને હવે બીજો કોઈ જ ઉપાય ન દેખાતા પાણીમાં ઝંપલાવવા જાય છે, ત્યાં તો એમના કાને શબ્દ પડ્યા, "સબૂર...રાજન્ ! શું કરી રહ્યા છો ?"

આજથી સાતમે દિવસે દરિયામાં એવું તોફાન આવશે, જેમાં આખી દુનિયા ડુબી જશે.

રાજાએ જોયું, તો પોતે રાજસભામાં રાજસિંહાસન પર જ છે. પાણીનો કોઈ પત્તો જ નથી. રાજા અત્યંત વિસ્મયથી ચારે બાજુ જોઈ રહ્યા છે. ત્યારે એ વિદ્વાને વિનયથી પ્રણામ કરીને કહ્યું, 'ક્ષમા કરજો રાજન્ ! હું નૈમિત્તિક નહીં, પણ ઈન્દ્રજાલિક છું. મારી કળા દેખાડવા માટે મેં આ પ્રયોગ કર્યો હતો.' રાજા એક વિસ્મયમાંથી બહાર આવે, એની પહેલા બીજુ વિસ્મયમાં ડુબી ગયા. મંત્રીશ્વરના વચનથી રાજાએ એ વિદ્વાનને ક્ષમા આપી અને તેની કળાનું ઉચિત સમ્માન કર્યું.

ભારતની પ્રાચ્યવિદ્યાની એક લુપ્ત થઈ ગયેલી કળા છે ઈન્દ્રજાળ. આજના મનોરંજનના સાધનો ક્યાંય પાણી ભરે, એવી અદ્ભુત એ કળા હતી. પણ અહીં જે વાત કરવી છે, તે મનોરંજનના પરિપ્રેક્ષ્યમાં નહીં, પણ અધ્યાત્મના પરિપ્રેક્ષ્યમાં છે. રાજાનું વિસ્મય, એમની ચિંતા, એમનો ભય, એમનો ગભરાટ, એમની દોટ....આ બધાનું પ્રવર્તક કારણ શું હતું ? દરિયાઈ તોફાન ? ના, એ તો હતું જ નહીં.

આપણા પૂર્વ મહર્ષિઓએ ઈન્દ્રજાળની આ ઘટનાની સમાંતર જ સમસ્ત સંસારના પ્રવર્તક કારણનું ચિંતન કર્યું છે, જે ચિંતનનું નવનીત **આત્મોપનિષદ્** નામના ગ્રંથમાં ઉપલબ્ધ થાય છે.

सत्यत्वेन जगद्भानं, संसारस्य प्रवर्तकम् ।
असत्यत्वेन भानं तु, संसारस्य निवर्तकम् ॥

જગત સત્ય છે, એવી પ્રતીતિ સંસારનું પ્રવર્તક કારણ છે. જગત અસત્ય છે, એવી પ્રતીતિ સંસારની નિવર્તક બને છે.

અજ્ઞાત પૂર્વ મહર્ષિએ **આત્મોપનિષદ્** ની રચના કરી છે. આ ગ્રંથ **અથર્વવેદ** સાથે સંબંધ ધરાવે છે. સંસ્કૃત ભાષામાં રચાયેલ આ ગ્રંથમાં 'અનુષ્ટુપ્' છંદમય શ્લોકો છે, તો ગદ્ય-અંશ પણ છે, જેનું કુલ પ્રમાણ ૪૩ શ્લોક જેટલું થાય છે. **આત્મોપનિષદ્**નું તત્ત્વ જેટલું ગહન છે, એટલું જ સચોટ છે, અને સમજવા પ્રયાસ કરીએ, તો ઘણું સરળ પણ છે....**सत्यत्वेन जगद्भानम्...**રાજા ગભરાયા ને દોડ્યા, કારણ કે જે સત્ય ન હતું, એને તેમણે સત્ય માની લીધું હતું. આખા સંસારની બધી જ ચેષ્ટાઓ - હર્ષ, શોક, હાસ્ય, રુદન, ભય, કંપ, દોટ - આ બધાનું પ્રવર્તક પણ આ જ છે.

અહીં તર્ક થઈ શકે છે, કે 'ઈન્દ્રજાળ અસત્ય હતી, પણ જગત તો સત્ય છે.' ભલે, અડધી વાત સુધી તો પૂર્વ મહર્ષિ અને આપણે સાથે જ ઊભા છીએ. હવે જવાબ આપો, કે ઈન્દ્રજાળ અસત્ય કઈ રીતે ? ખોટી છે માટે ? તો ખોટી શી રીતે ? માયા છે માટે ? તો માયા કઈ રીતે ? જે દેખાય છે, સંભળાય છે, અનુભવાય છે, તે ખોટું શી રીતે હોઈ શકે ? છેલ્લે તો એમ જ કહેવું પડશે, કે જે દેખાયું, સંભળાયું ને અનુભવાયું, એમાંથી પછી કશું જ ન હતું, માટે એ ખોટું હતું.

નાનો બાળક શિષ્ય કે નાટકના કરુણ દૃશ્યો જોઈને રડે છે, ત્યારે તેની માતા એને સમજાવે છે - 'બેટા, તું રડ નહીં, આ બધું ખોટું હોય.' ફિલ્મમાં નાયકનું મૃત્યુ દેખાય છે, સંભળાય છે, અનુભવાય છે, પણ એ ખોટું છે, કારણ કે કેમેરાની સ્વીચ ઑફ થાય, પછી તેવું હોતું નથી. ઈન્દ્રજાળ હોય કે ફિલ્મ હોય, નાટક હોય કે સ્વપ્ન હોય, એ બધું ખોટું છે, કારણ કે પછી તેવું હોતું નથી. સૃષ્ટિનું આ સર્વસમ્મત સત્ય છે, કે જે સ્થિર નથી, તે સત્ય નથી. હવે આ જ સત્યના માપદંડથી જગતને અને જીવનને માપવાનું છે. શું જગત સત્ય છે ? જેમ સ્વપ્ન સ્થિર નથી તેમ જગત પણ સ્થિર નથી. જેમ

જે સ્થિર નથી,
એ સત્ય નથી.

ઇન્દ્રજાળમાં દેખાતી વસ્તુ કાયમ નથી, તેમ જગત પણ કાયમ નથી. જેમ નાટકનો અંત છે, તેમ આપણને લાગતા-વળગતા જગતનો પણ અંત છે. જેમ કેમેરાની સ્વિચ ઑફ થતાની સાથે ફિલ્મનું દશ્ય બદલાઈ જાય છે, તેમ શ્વાસની સ્વિચ ઑફ થતાની સાથે જીવનનું દશ્ય બદલાઈ જાય છે. **પંચસૂત્ર** કહે છે - **सुविणु व्व सव्वमालमालुत्ति** - જેમ સ્વપ્ન સત્ય નથી, એમ જગત પણ સત્ય નથી.

અજ્ઞાનીની દશા બાળક જેવી છે, જે ખોટું છે, એને એ સત્ય સમજે છે અને એટલે જ ક્લેશ અને સંક્લેશ વહોરી લે છે. ચિંતા અને ભયનો ભોગ બને છે. દોડધામ કરે છે, અને પોક મૂકીને રડે છે. ઉપનિષદ્‌ના મહર્ષિ એક માતાની અદાથી એને કહે છે, “વત્સ ! તું રડ નહીં, આ બધું ખોટું હોય. જે ખોટું છે, એને તે સાચું સમજી લીધું છે, એ જ તારા દુઃખમય સંસારનું મૂળ છે.” આ પૃષ્ઠભૂમિ પર સ્પષ્ટ થાય છે **આત્મોપનિષદ્-**

सत्यत्वेन जगद्भानं संसारस्य प्रवर्तकम् ।

પુત્રમૃત્યુનો આઘાત વજ્રઘાત બને, એના મૂળમાં ‘અકસ્માત્’ નથી હોતો, પણ નાટકના પાત્રની જેમ જે વ્યક્તિ આપણી જીવનમાં અલ્પકાળ માટે આવી છે, એની સાથેના સંબંધને શાશ્વત સત્ય સમજી લેવાની ભૂલ હોય છે. દુઃખ કર્મથી આવે છે. કર્મ રાગ-દ્વેષથી બંધાય છે, અને રાગ-દ્વેષનું મૂળ આ જ છે - **सत्यत्वेन जगद्भानम्** - જગતને સત્ય સમજવાની ભૂલ...અસ્થિરને સ્થિર સમજવાની ભૂલ. જાપાનની એક કહેવત છે - Don’t carve on ice or paint on water. બરફ ઉપર કોતરકામ કે પાણી ઉપર ચિત્રકામ ન કરો. ફ્લોરા ફાઉન્ટેનના ટ્રાફિક અને ભીડમાં કોઈ કીડી માટીનો કણ કણ તાણી જઈને રોડની વચ્ચેવચ્ચ દર બનાવવા માટે પ્રયાસ કરે, એના જેવી દુનિયાના જીવોની ચેષ્ટા છે. એ કીડીની દર બનાવવાની ચેષ્ટા, ચોપાટીની રેતીમાં કોઈ બાળકની ઘર બનાવવાની ચેષ્ટા અને કોઈ બિઝનેશમેનની અલિશાન બંગલો બમાવવાની ચેષ્ટા...જ્ઞાનીની દષ્ટિમાં એ ત્રણે ચેષ્ટા એક સરખી છે. **યોગદષ્ટિસમુચ્ચય**માં કહ્યું છે-

बालधूलिगृहक्रीडा-तुल्याऽस्यां भाति सर्वथा ।
तमोग्रन्थिविभेदेन, भवचेष्टाऽखिलैव हि ॥

જ્યારે આત્માને ‘સ્થિરા’ દષ્ટિની પ્રાપ્તિ થાય છે, ત્યારે એની અજ્ઞાનગ્રંથિ ભેદાઈ જાય છે અને પછી સંસારની બધી જ ચેષ્ટા એને એવી લાગે છે, જાણે એક

બાળક ધૂળમાં ઘર બનાવી રહ્યો હોય. બાળકને મોહ છે, મમત્વ છે, આનંદનો આભાસ છે, ઘર બન્યાનો હર્ષ છે, પણ સમજુની દૃષ્ટિમાં એ કેવું ? પવનનો ઝપાટો કે કોઈ બંદરકાર માણસની લાત એ ઘરને હતું - ન હતું કરી દે છે. અને પછી એ બાળક ધ્રુસકે ધ્રુસકે રડે છે.

ભ્રમ અને સત્ય વચ્ચેનું અંતર ખાસ્સું છે ।
નશ્વરના મોહનું પરિણામ માત્ર આંસું છે ॥

આચારાંગસૂત્રમાં કહ્યું છે - **भेउरेसु ण रज्जेज्जा** - જે સ્થિર નથી, એને સ્નેહ કરવાનો કોઈ અર્થ નથી. દુનિયા દુઃખી છે, કારણ કે એને વીજળીના ચમકારે દિવાળી ઉજવવી છે, જે શક્ય જ નથી. અનાદિની આ યાત્રામાં ૫-૨૫-૫૦ વર્ષના સંબંધોનું વજૂદ કેટલું ? એ 'છે' એના કરતાં વધુ તો એ 'નથી.' સમજદારી એમાં જ છે, કે માની લઈએ કે નથી.... **असत्यत्वेन भानं तु...** બસ...પછી બધાં જ રાગ-દ્વેષ પણ સમાપ્ત અને દુઃખમય સંસાર પણ સમાપ્ત. **संसारस्य निवर्तकम् ।**

દુનિયા દુઃખી છે, કારણ કે એને વીજળીના ચમકારે દિવાળી ઉજવવી છે.

દરિયાઈ તોફાન ઈન્દ્રજાળરૂપે ઓળખાઈ ગયું ને મહારાજા શાંત થઈ ગયાં. સંસાર ઈન્દ્રજાળરૂપે ઓળખાઈ જાય, તો આત્મા શાંત થઈ જાય..તદ્દન શાંત...જેને કાંઈ ભેગું કરવું નથી...કાંઈ ભોગવી લેવું નથી...કોઈ ભાગ-દોડ કરવી નથી...કોઈ ચિંતા નથી..કોઈ ભય નથી...કોઈ શોક નથી...કોઈ જંજાળ નથી. પરમ શાંતિની આ દશા જ તો 'મોક્ષ' છે. હવે **આત્મોપનિષદ્** માં કોઈ આશંકાનો અવકાશ નથી - असत्यत्वेन भानं तु संसारस्य निवर्तकम् ।

અજ્ઞાની જેના માટે જંજાળો કરે છે, તે વસ્તુ જ્ઞાનીને મન છે જ નહીં, તો એ શેના માટે મથામણ કરે ? અજ્ઞાનીને મૃગજળમાં પણ જળ દેખાય છે, જ્ઞાનીને જળમાં પણ મૃગજળ દેખાય છે.

इन्द्रजालमिदं सर्वं यथा मरुमरीचिका ।

દોડે છે એ જેને જળ દેખાય છે, જેને મૃગજળ જ દેખાય છે, એ કેમ દોડે ? એ તો બસ...શાંત રહે છે.

અજ્ઞાનીને મૃગજળમાં પણ જળ દેખાય છે. જ્ઞાનીને જળમાં પણ મૃગજળ દેખાય છે.

આ જીવનની સાર્થકતા દોડધામ કરવામાં નથી, શાંત થવામાં છે. વિદ્વાને જે શબ્દો રાજાને કહ્યા હતા, એ જ શબ્દો ઉપનિષદ્‌ના મહર્ષિ આપણને કહી રહ્યા છે - 'સબૂર ! આત્મન્ ! તું શું કરી રહ્યો છે ?' જરા થોભીએ, સાંભળીએ અને સમજીએ...શાંતિ આપણને વરવા માટે ક્યારની ય ઉત્સુક છે.

આર્ષ વિશ્વ
આચાર્ય કલ્યાણબોધિ

સુખનું સરનામું

સંવેગરંગશાળા

કનકપુર નગરીનું મનોરમ ઉદ્યાન છે. ઈન્દ્રમહોત્સવમાં લોકોના ટોળે ટોળા ઉમટી રહ્યા છે. રાજા કનકધ્વજ પણ આ ઉત્સવનું દર્શન કરવા સવારી સાથે આવી પહોંચ્યા છે. ચારે બાજુ જોતાં જોતાં એક જગ્યાએ રાજાની દૃષ્ટિ સ્થિર થઈ જાય છે. હર્ષના સ્થાને ગંભીરતા છવાઈ જાય છે અને રાજાનું મન એક ગહન મંથનમાં ડુબકી લગાવી દે છે.

એવું શું હતું એ જગ્યાએ ? ત્યાં હતો એક દેડકો, કોઈ વનસ્પતિને એ ખાઈ રહ્યો હતો. ને એ પોતે એક મોટા સાપ દ્વારા ખવાઈ રહ્યો હતો. દેડકાનું અડધું શરીર સાપના મોઢામાં છે. ગણતરીની પળોમાં સાપ એને આખે આખો ગળી જવાનો છે, ને છતાં દેડકો ભાવિની કોઈ ચિંતા કર્યા વિના પોતાના મનમાન્યા સુખમાં મસ્તાન છે, વનસ્પતિભક્ષણના તુચ્છ સુખની એ ઉપેક્ષા કરે અને પોતાના હિતનો વિચાર કરે, તો એ મૃત્યુના મુખમાંથી બહાર નીકળી શકે છે. પણ કા...શ...

વાત એટલે અટકતી નથી. એ જ સાપને એક સમડીએ પકડ્યો છે, ને એની ચાંચનો શિકાર બનાવવાનો પ્રારંભ કરી દીધો છે. જે સ્થિતિ દેડકાની છે, એ જ સ્થિતિ સાપની પોતાની પણ છે. ને જે સ્થિતિ સાપની છે, એ જ સ્થિતિ સમડીની પણ છે, કારણ કે એક ભયંકર અજગર એ સમડીને ગ્રસી રહ્યો છે.

રાજાનો દેહ નગરીના ઉદ્યાનમાં છે, પણ રાજાનું મન વિરાગના ઉપવનમાં પ્રવેશી ચૂક્યું છે. સમસ્ત સંસારનું ચિત્ર માત્ર એ એક જ દશ્યમાં સ્પષ્ટ થઈ રહ્યું છે.

इय अणवरयं निवडंत-आवयाऽवायपूरिए लोगे ।
भोगप्पसंगवंछा जणस्स ही ही महामोहो ॥

જ્યાં સતત આપત્તિઓની વણઝાર વરસી રહી છે, એનું નામ સંસાર. જ્યાં નિત નવાં દુઃખોનો મેળો જામ્યો છે, એનું નામ સંસાર. જ્યાં ત્રણ સાંધો ને તેર તૂટે નો શાશ્વત સિદ્ધાન્ત છે, એનું નામ સંસાર. આવા સંસારમાં તુચ્છ ભોગસુખની આશંસા કરવી, એ આશંસાને સક્રિય બનાવવી અને એ મથામણમાં માથે લટકતી

મોતની તલવારને ભૂલી જવી...એ જીવોનો કેવો મહામોહ છે !

સમજુ વ્યક્તિ જો દેડકાની ભાષામાં વાત કરી શકે, તોએ એને શું કહે ? બહારથી તને શું મળી રહ્યું છે, એ જોવાનું છોડ, અને તું તારું પોતાનું શું ગુમાવી રહ્યો છે, તેની ચિંતા કર. મળી રહ્યું છે ક્ષણિક, ક્ષુદ્ર સુખ અને ગુમાવી રહ્યો છે સર્વસ્વ. જો આ સાપ તને પૂરે પૂરો સ્વાહા કરે, એટલી જ વાર છે. હજી તક છે, તારી એક જ છલાંગ તને મોતના મુખમાંથી બચાવી શકે તેમ છે. શરત એટલી જ કે તું વનસ્પતિની આશંસા છોડી દે.

જ્ઞાનીઓ આપણને આ જ સંદેશ આપી રહ્યા છે. લોભામણા સ્પર્શસુખ, લાલાયિત કરતાં સ્વાદના ચટકા, સુગંધની સ્પૃહા, મોહકરૂપના નશા, ને ગીત-સંગીતની મસ્તી આ બધું જ એ વનસ્પતિ જેવું છે, ને તું દેડકા જેવો. સાપ તને દેખાતો જ નથી, કારણ કે એના તરફ તારી પીઠ છે, તારે એને જોવો જ નથી. પણ મને એ દેખાઈ રહ્યો છે. સાપ એટલે ગર્ભાવાસની કાળી યાતના, સાપ એટલે કેન્સર જેવા રોગોની વિડંબણા, સાપ એટલે જીવલેણ અકસ્માતોની પીડા, સાપ એટલે મોત કરતાં ય બદતર ઘડપણ અને સાપ એટલે ફરી ફરી આવતું મૃત્યુ. હજી તક છે તારી પાસે...આત્મસાધનાના માર્ગે છલાંગ લગાવી દે, તો સાપથી મુક્ત થઈ શકે છે. અનંત દુઃખો અને અનંત મૃત્યુથી હંમેશ માટે છૂટકારો, શરત એટલી જ...ક્ષણિક અને ક્ષુદ્ર ભોગસુખને લાત મારી દે.

જ્યાં સુધી દેડકો વનસ્પતિથી વિમુખ ન થાય, ત્યાં સુધી એને સાપનું દર્શન પણ થવું શક્ય નથી, તો છલાંગ તો ક્યાંથી શક્ય બને ? રાજાએ વનસ્પતિને તો જોઈ જ હતી. આજે સાપ પણ જોઈ લીધો. જે ભોગસુખો આનંદદાયક લાગતા હતાં, તેમની દુઃખદાયકતા પરખાઈ ગઈ અને રાજાએ સમગ્ર રાજ્યનો ત્યાગ કરીને આત્મસાધનાના પુનિત પંથે પ્રયાણ કર્યું. શ્રામણ્યના પરિશુદ્ધ પાલનના પ્રભાવે એ જ જીવનના અંતે પરમપદને પ્રાપ્ત કર્યું.

બહારથી તને શું મળી રહ્યું છે ? એ જોવાનું છોડ અને તું તારું પોતાનું શું ગુમાવી રહ્યો છે, તેની ચિંતા કરી લે.

ઉપદેશ કરતાં પણ ઉદાહરણ વધુ અસરકારક હોય છે. આવા લગભગ ૮૨ ઉદાહરણોથી સમૃદ્ધ એક અદ્‌ભુત ગ્રંથ એટલે **સંવેગરંગશાળા.** આજથી ૯૪૪ વર્ષ પૂર્વે શ્રીજિનચંદ્રસૂરિ મહારાજે આ ગ્રંથની રચના કરી હતી. જેવું નામ એવા ગુણ...સંવેગરસની સાક્ષાત્ રંગશાળા છે આ કૃતિ. સંવેગ એ સાધનાજીવનનું હાર્દ

છે. ગ્રંથકારશ્રી સ્પષ્ટપણે કહે છે -

सुचिरं पि तवो तवियं, चिन्नं चरणं सुयं पि बहु पढियं ।
जइ नो संवेगरसो, ता तं तुसखंडणं सव्वं ॥

ખૂબ દીર્ઘકાલીન તપ કર્યું, ચારિત્રનું પાલન કર્યું, ખૂબ શાસ્ત્રાભ્યાસ કર્યો, પણ જો હૃદય સંવેગરસથી તરબતર નથી થયું, તો સમજી લો કે એ બધી જ ફોતરાં ખાંડવા જેવી નિરર્થક ચેષ્ટા છે.

સંવેગ એટલે પરમપદની અદમ્ય ઝંખના. સંવેગ એટલે પરમાત્મા અને સદ્ગુરુ પ્રત્યેનો અનહદ અનુરાગ. સંવેગ એટલે વાંભ વાંભ ઉછળતો વિરાગનો મહાસાગર. **સંવેગરંગશાળા** ગ્રંથ સંવેગના માધ્યમે આત્મકલ્યાણની કેડી કંડારે છે. આત્મા જેમ જેમ આ ગ્રંથથી ભાવિત-પ્રભાવિત થાય તેમ તેમ અવર્ણનીય આનંદની અનુભૂતિ કરે છે.

संवेगवण्णणे पुण, पए पए परमसुहलाभो

અર્થ અને કામને જ પોતાની પસંદગીનો વિષય બનાવી ચૂકેલ દુનિયાને ‘સંવેગ’ એ શુષ્ક વિષય (Dry Subject) લાગે એમાં નવાઈ નથી. સંવેગ સુખદાયક છે, આ વાત એને અવિશ્વસનીય લાગે, એમાં પણ આશ્ચર્ય નથી. આમ છતાં આ એક નક્કર વાસ્તવિકતા છે. વિક્રમપ્રતિબોધક શ્રીસિદ્ધસેન દિવાકરસૂરિ મહારાજે કહ્યું છે -

विरागहेतुप्रभवं न चेत् सुखं ।
न नाम तत्किञ्चिदिति स्थिता वयम् ॥

જે સુખના મૂળમાં સંવેગ નથી, એ સુખ પોલું છે, તદ્દન તુચ્છ છે...એ વાસ્તવમાં સુખ જ નથી. અર્થ અને કામની પાછળ મુગ્ધ બનેલી દુનિયાએ એક વિરામ લઈને એટલું જોવાની જરૂર છે, કે હું જ્યાં જવા દોડી રહી છું, ત્યાં પહોંચી ગયેલાની સ્થિતિ કેવી છે ? શું તેઓ સુખી છે ખરા ? કોઈ અબજોપતિને એકાંતમાં મળો, તો ખબર પડે કે એના સ્મિતના આવરણની પાછળ કેટકેટલા અશ્રુ છુપાયેલા છે !

जो जितना बड़ा उतना ही अकेला होता है ।
चहेरे पे मुस्कान लगा कर मन ही मन रोता है ॥

ઉંઘ, ભૂખ ને સ્વાસ્થ્યનું સુખ, જે પશુને પણ સુલભ હોય છે, એને ય જેમણે

ગુમાવી દીધું છે, એમને સુખી શી રીતે કહી શકાય ? પ્રેમાળ પરિવાર ને નિઃસ્વાર્થ સ્નેહીઓનું સુખ, જે ગ્રામીણ સામાન્ય માનવને ય સુલભ હોય છે, એનાથી ય વંચિત વ્યક્તિ સુખી શી રીતે ઠરી શકે ? અપહરણ અને અપમૃત્યુની આશંકાઓ જેને મોત સુધી મારતી રહે છે, એના જેવો દુઃખી બીજો કોણ હોય ? 'કામ'ના ક્ષેત્રે ખૂબ ખૂબ પ્રગતિ (?) કરી ચૂક્યા હોય, એમના જીવનમાં દૃષ્ટિપાત કરો, તો 'સુખ' વિષેનો અભિપ્રાય ચોક્કસ બદલાઈ જાય. પારિવારિક સુખ-શાંતિનું સત્યાનાશ થઈ ગયું છે...યા તો પરિવાર-લાગણી-નિર્મળ પ્રેમ જેવું કોઈ તત્ત્વ જ રહ્યું નથી...ગુપ્ત રોગોએ શરીરને ઘેરી લીધું છે...વાસનાની પૂર્તિ અશક્ય બની છે...કામનાની જ્વાળાઓ જીવતાં જ સળગાવી રહી છે. પુરાણો અને સ્મૃતિઓમાં કહ્યું છે ને -

न जातु कामः कामाना-मुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव, भूय एवोपवर्धते ॥

કામોપભોગથી કામનાની શાંતિ થવી શક્ય જ નથી. ભોગ, એ તો અગ્નિમાં આપેલી આહૂતિ છે, જે અગ્નિને માત્ર ભડકાવી શકે છે. જરૂર આટલી જ છે, જ્યાં પહોંચવું છે, ત્યાં પહોંચી ગયેલાને જોઈ લઈએ, પછી યાત્રા સ્વયં પૂર્ણવિરામ બની જશે. સુખ સંપત્તિમાં પણ નથી અને સંભોગમાં પણ નથી. સુખ તો છે માત્ર ને માત્ર સંતોષમાં.

सुहाइं संतोससाराइं

'સંવેગરંગશાળા'નું ઉદ્દેશ્ય સંવેગરસના માધ્યમે સમગ્ર વિશ્વને સંતોષનું પરમ સુખ આપવાનું છે. ૧૦,૦૫૩ ગાથા પ્રમાણ આ વિરાટકાય પ્રાકૃત મહાકાવ્યમાં જીવન જીવવાની કળા પણ છે અને મૃત્યુને મહોત્સવ બનાવવાની કુશળતા પણ છે. જેનું જીવન જંગલ જેવું હોય, તે પળે પળે મૃત્યુ પામે છે. જીવન મંગલ બને, પછી તો મૃત્યુ પણ મહોત્સવ બની જાય છે. પૂર્વમહર્ષિઓએ જીવનને મંગલ બનાવવાની કળા સ્વયં આત્મસાત્ કરી હતી અને પરમ કરુણાથી એ જ કળાને આવા અદ્ભુત ગ્રંથોના માધ્યમે અમર બનાવવાનો પ્રયાસ કર્યો હતો. આવા ગ્રંથોનું પરિશીલન એ મહર્ષિઓનો શક્તિપાત છે. આજે પણ અનેક સાધકો મૂળ ગ્રંથ અને ગુજરાતી

જે સુખના મૂળમાં સંવેગ નથી, એ સુખ વાસ્તવમાં સુખ જ નથી. દુનિયા એટલે જ દુઃખી છે, કે એની પાસે સંવેગ નથી.

અનુવાદના માધ્યમે એ અણમોલ શક્તિપાતને ઝીલી રહ્યા છે, અને સંવેગરસથી તરબતર થઈને પરમ સુખનો અનુભવ કરી રહ્યા છે.

જીવન જંગલ છે, તો પળે પળ મૃત્યુ છે. જીવન મંગલ છે, તો મૃત્યુ પણ મહોત્સવ છે.

ચાલો, આપણે ય આપણી આંખોમાં સંવેગનું અંજન આંજી લઈએ. પછી તો વનસ્પતિમાં જ સાપના દર્શન થશે, ને એ પળ જ સાપની અંતિમ પળ હશે.

(સર્વજ્ઞવચન વિરુદ્ધ લખાયું હોય, તો ક્ષમાયાચના.)